योगविद्या

वर्ष 5 अंक 9
सितम्बर 2016
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2016

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : *सत्यम्* चलचित्र का एक दृश्य

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती का जन्मोत्सव; 2-4: गुरु पूर्णिमा 2016, मुंगेर

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

पवित्रता

जिस प्रकार एक स्वच्छ श्वेत वस्त्र पर रंग भली प्रकार से चढ़ जाता है, उसी प्रकार कामना-रहित, विकार-रहित तथा पवित्र मन पर सद्शिक्षाएँ अपना प्रभाव सबसे अधिक डाल पाती हैं। मन और इन्द्रियों की पवित्रता परम तत्त्व के साक्षात्कार के लिए पूर्वापेक्षित है।

पवित्रता दो प्रकार की होती है–बाह्य तथा आन्तरिक। स्नानादि से शरीर को शुद्ध करना, वस्त्र, मकान तथा वातावरण को स्वच्छ रखना तथा सात्त्विक भोजन करना बाह्य पवित्रताएँ हैं। आन्तरिक पवित्रता का अर्थ है राग-द्वेष-रहित होना तथा पवित्र भाव रखना। इससे आनन्द, प्रेम, बल, सन्तुलन, गम्भीरता, प्रसन्नता, एकरसता, सहिष्णुता, उदारता और एकाग्रता जैसे गुण स्वत: प्राप्त हो जाते हैं।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 5 अंक 9 · सितम्बर 2016
(प्रकाशन का 54 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 विचार शक्ति द्वारा नई सभ्यता की सृष्टि
8 ध्यान–एक परिचय
18 प्रत्याहार–घेरण्ड संहिता के आलोक में
25 मन का नाश
32 सत्यम् वाणी
42 स्वामी शिवानन्द जी की आध्यात्मिक शिक्षा
48 एड्स पर योगनिद्रा के चिकित्सात्मक प्रभाव
52 योग मेरी जिन्दगी, आश्रम मेरा आशियाना

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

विचार शक्ति द्वारा नई सभ्यता की सृष्टि

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

विचार-संस्कृति एक सटीक विज्ञान है। व्यक्ति को सम्यक् विचारों का पोषण करना चाहिए तथा सभी प्रकार के व्यर्थ एवं सांसारिक विचारों को निकाल फेंकना चाहिए। जो व्यक्ति बुरे विचारों को पनपने देता है वह अपने आपको तथा अपने वातावरण, दोनों को हानि पहुँचाता है। वह विचार-संसार को दूषित करता है। उसके बुरे विचार सुदूर व्यक्तियों के मन में भी प्रवेश करते हैं, क्योंकि विचार तडित-वेग से चलते हैं।

सभी प्रकार के रोगों के कारण बुरे विचार हैं। सभी रोग सर्वप्रथम एक अशुद्ध विचार से जन्म लेते हैं। जो उदात्त और दिव्य विचारों को मन में रखता है वह अपनी तथा संसार की भी असीम भलाई करता है। वह सर्वत्र सान्त्वना, आशा, शान्ति एवं प्रसन्नता प्रसारित कर सकता है।

आदर्श का महत्त्व

बड़ी शोचनीय बात है कि अधिकांश लोगों का जीवन में कोई आदर्श नहीं होता। पढ़े-लिखे लोग भी किसी आदर्श को पसन्द नहीं करते। वे लक्ष्यहीन जीवन व्यतीत करते हैं और एक तिनके के समान इधर-उधर दिशाहीन भटकते हैं। वे जीवन में बिल्कुल प्रगति नहीं करते। क्या यह दयनीय स्थिति नहीं है? मनुष्य जीवन पाना कितना कठिन है, फिर भी लोग जीवन में एक आदर्श को अपनाने का महत्त्व नहीं समझते।

'खाओ, पीओ और मस्त रहो' की धारणा धनवान् और लोभी भोगवादियों द्वारा अपनाई जाती है। इस मत के असंख्य अनुयायी हैं और यह गणना प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह असुरों और राक्षसों का आदर्श है, जो व्यक्ति को क्लेश और दु:ख के अन्धकार की ओर ही ले जायेगा।

वह व्यक्ति धन्य है जो अपने विचारों का उत्थान करता है, एक आदर्श रखता है तथा अपने आदर्श पर जीने के लिए कठोर परिश्रम करता है।

विश्व कल्याण हेतु विचार शक्ति

विचार ठोस वस्तुएँ हैं, इनमें अत्यधिक बल एवं ऊर्जा होती है। इस विचार शक्ति को सावधानी से उपयोग में लाना चाहिए। यह विभिन्न तरीकों से तुम्हारी सेवा कर सकती है। परन्तु निरर्थक और बेतरताब उद्देश्यों के लिए इस शक्ति का दुरुपयोग न करो। यदि तुम इस शक्ति का दुरुपयोग करते हो, तो तुम्हें शीघ्र ही इसकी भयंकर प्रतिक्रिया का सामना भी करना होगा। तुम्हारा पतन होगा। इसलिए इस शक्ति का उपयोग दूसरों की सहायता के लिए ही करो।

भय, स्वार्थ, घृणा, कामुकता तथा अन्य विकृत नकारात्मक विचारों का निष्ठुरता से निर्मूलन करो। ऐसे विचार दुर्बलता, रोग, असामंजस्य, अवसाद और निराशा उत्पन्न करते हैं। दया, साहस, प्रेम एवं पवित्रता जैसे सकारात्मक विचारों का पोषण करो। नकारात्मक विचार अपने आप ही मर जायेंगे। प्रयत्न करो और अपने सामर्थ्य का अनुभव करो। शुद्ध विचार तुम्हें नवजीवन प्रदान करेंगे।

उदात्त दिव्य विचार मन में विस्मयकारी प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वे बुरे विचारों को दूर भगाते हैं और मानसिक भाव में परिवर्तन लाते हैं। दिव्य विचारों को लाने से मन पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाता है।

समान वस्तुएँ एक-दूसरे को आकृष्ट करती हैं। यदि तुम एक बुरा विचार मन में लाते हो तो वह विचार दूसरे व्यक्तियों के दुष्ट विचारों को अपनी ओर आकृष्ट

करता है। उन्हीं विचारों को तुम दूसरों तक भी पहुँचाते हो। इस तरह अपने बुरे विचारों से तुम विश्व को दूषित करते हो।

विचार एक जीवन्त, गत्यात्मक ऊर्जा है। यदि तुम अपने मन में एक उदात्त विचार लाते हो तो यह विचार दूसरों के अच्छे विचारों को आकृष्ट करेगा। तुम उस शुभ विचार को अन्य लोगों तक पहुँचा सकोगे।

आध्यात्मिक प्रगति के लिए विचार शक्ति

जिस प्रकार फालतू बातचीत और गपशप में ऊर्जा नष्ट होती है, उसी प्रकार व्यर्थ विचार करने से भी शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए तुम्हें एक भी व्यर्थ विचार नहीं करना चाहिए। अपनी मानसिक ऊर्जा को बचाओ, इसका उच्च आध्यात्मिक कार्यों और दिव्य चिन्तन में उपयोग करो।

अपने मन से सभी अनावश्यक, बेकार और गन्दे विचारों को बाहर निकालो। व्यर्थ विचार तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक हैं। जब तुम बुरे विचारों को मन में लाते हो, तब तुम प्रभु से दूर होते हो। प्रभु के विचार मन में लाओ। केवल उन्हीं विचारों को लाओ जो सहायक एवं लाभदायक हैं।

सात्त्विक विचार आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मन को पुरानी लीकों में जाने तथा मनमर्जी करने की अनुमति न दो। सदा सतर्क और चौकस रहो।

विचार शक्ति और एक नवीन सभ्यता

विचार मनुष्य को बनाता है और मनुष्य सभ्यता को। इतिहास की प्रत्येक महान् घटना के पीछे एक शक्तिशाली विचार-शक्ति रही है। सभी खोजों और आविष्कारों के पीछे, सभी धर्मों और दर्शन-शास्त्रों के पीछे, सभी प्राण-रक्षक अथवा प्राण-विनाशक उपकरणों के पीछे विचार ही रहे हैं।

एक नई सभ्यता का निर्माण कैसे किया जाए, जो मानव-जाति की शान्ति, समाज की खुशहाली और व्यक्ति की मुक्ति सुनिश्चित कर सकेगी? एक ऐसी विचार-शक्ति के सृजन द्वारा जो मनुष्यों के दिलो-दिमाग में करुणा, सेवा, प्रभु प्रेम और उसे पाने की तीव्र इच्छा स्थापित कर देगी।

जो धन और समय व्यर्थ के मनसूबों और विनाशकारी गतिविधियों में बरबाद किया जाता है, उसका अंश मात्र भी यदि एक अच्छे विचार के सृजन में दिया जाए, तो अभी और इसी वक्त एक नई सभ्यता का शुभागमन हो जाएगा।

अणु और परमाणु बम, आई.सी.बी.एम. मिसाइलें तथा अन्य इसी प्रकार के आविष्कार मानव-जाति को निश्चित रूप से विनाश की ओर ले जाएँगे। वे तुम्हारे धन को नष्ट करते हैं, तुम्हारे पड़ोसियों का विनाश करते हैं, पूरे विश्व का वातावरण दूषित करते हैं और तुम्हारे हृदय में भय, घृणा तथा संदेह पैदा करते

हैं। मन असंतुलित हो जाता है और शरीर रोग-ग्रस्त हो जाता है। इस प्रवृत्ति को तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए।

अध्यात्म और धर्म जैसी जीवन की सभी सात्त्विक वस्तुओं में अध्ययन और अनुसंधान को बढ़ावा दो। ऐसे सन्तों एवं मनीषियों की सहायता करो जो वास्तव में मानव-जाति के हितैषी हैं। उन्हें धर्म के पठन-पाठन, प्राचीन आध्यात्मिक साहित्य में शोध तथा विश्व कल्याण के लिए प्रबल विचार-शक्ति के प्रसार-प्रचार के लिए प्रोत्साहित करो।

ऐसे सभी अश्लील और अवांछित साहित्य पर प्रतिबन्ध लगाओ, जो युवा पीढ़ी के विचारों को दूषित करता है। युवा दिमाग को स्वस्थ विचारों, भावनाओं तथा आर्दशों से लबालब भर देना चाहिए।

जो व्यक्ति बटुआ चुराता या धोखा देता या हत्या करता है, कानून उसे दण्ड देता है। परन्तु ये अपराध उस अपराध की तुलना में कुछ भी नहीं, जिसमें एक भ्रष्ट व्यक्ति समस्त युवा पीढ़ी का मन कुविचारों से भर देता है। वही व्यक्ति धरती पर होने वाली हत्याओं और अन्य अपराधों का वास्तविक सूत्रधार है। वह तुम्हारे सबसे बड़े धन, तुम्हारी विवेक-बुद्धि को चुरा लेता है। वह तुम्हें मीठे अमृत के नाम पर विष दे देता है। नई सभ्यता का कानून ऐसे असुरों से बड़ी सख्ती से निपटेगा।

नई सभ्यता उन व्यक्तियों को हर सम्भव प्रोत्साहन देगी जो दर्शन शास्त्र, धर्म तथा अध्यात्म का पठन-पाठन करना चाहते हैं। यह इन विषयों का अध्ययन विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में अनिवार्य करेगी। यह आध्यात्मिक क्षेत्र के विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियाँ प्रदान करेगी, धर्म और दर्शन में शोध करने वालों को पुरस्कारों एवं उपाधियों से सम्मानित करेगी। आध्यात्मिक लालसा मनुष्य की अन्तरतम कामना है, इसे अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए।

नई सभ्यता के निर्माण में लगाई गई सारी मेहनत एक दिन अवश्य रंग लाएगी। नई सभ्यता में मनुष्य पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहेगा और अपने साथियों की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहेगा। स्वयं परमात्मा सभी में निवास करता है—इस बात की अनुभूति कर वह सभी से प्रेम करेगा। वह सभी जीवात्माओं के कल्याण के लिए समर्पित रहेगा। यह एक ऐसा आदर्श समाज होगा जहाँ लोग अपना सब-कुछ दूसरों के साथ बाँटेंगे और प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करेंगे! ऐसे समाज में कर और शुल्क की क्या आवश्यकता रहेगी जब प्रत्येक व्यक्ति सभी के लिए स्वेच्छा से कार्य करेगा? पुलिस और सेना की आवश्यकता कहाँ होगी जब सभी लोग सदाचार के प्रति समर्पित होंगे?

यही नई सभ्यता का आदर्श है। इस लक्ष्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सकारात्मक विचार-शक्ति के सृजन और सम्प्रेषण के लिए प्रयास करने दो। प्रभु आप सभी को इस महान् कार्य की सफलता हेतु आशीष दें।

ध्यान–एक परिचय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान के अभ्यासों का उद्देश्य हमें ध्यान की सहज अवस्था में ले जाना है। सच कहें तो ध्यान सिखाना असंभव है और यदि कोई ध्यान सिखाने की बात करता है तो निश्चित जानो कि वह सच से कोसों दूर है। हाँ, कोई रास्ता या विधि बताई जा सकती है, जिसे अपनाकर शायद तुम ध्यान का अनुभव प्राप्त कर सको। ध्यान की विभिन्न विधियों के वर्णन का लक्ष्य भी यही है, ताकि तुम सहज ही ध्यानावस्था का अनुभव प्राप्त कर सको। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को हमेशा याद रखना– ध्यान सिखाया नहीं जा सकता, क्योंकि यह शब्दों की अभिव्यक्ति की सीमा से परे है।

ध्यान को कुछ निश्चित शब्दों में परिभाषित करना संभव नहीं और शायद यही कारण है कि इसके सम्बन्ध में गलत धारणायें तथा भ्रांतियाँ व्यापक रूप से फैली हुई हैं। अनेक लोग कुछ देर के लिए आँखें बन्द करके बैठ जाते हैं और यह सोचकर प्रसन्न होते हैं कि हमने ध्यान किया। यह संभव है कि उन्होंने सचमुच ध्यान किया हो, लेकिन यह जानना कठिन है। साधारणत: ऐसा नहीं होता। लोग आँखें बन्द करने के पश्चात् भी विभिन्न समस्याओं और बाह्य जगत् के विचारों में फँसे रहते हैं तथा सोचते हैं कि हम ध्यान कर रहे हैं। वास्तव में यह ध्यान नहीं है, भले ही आँखें बन्द हों और लोग मूर्तिवत् बैठे रहें। वास्तव में वे उस समय जगत् के विचारों से घिरे रहते हैं, चाय-नाश्ता जैसी विषय-वस्तुओं के चिन्तन में लगे रहते हैं, कोई आत्मदर्शन और आत्म विश्लेषण तो करते नहीं। दूसरे शब्दों में कहें तो यह भी एक तरह की बहिर्मुखता है, अन्तर केवल इतना है कि इस दौरान तुम्हारी आँखें बन्द रहती हैं। यूँ कहें कि यह बन्द आँखों से बहिर्जगत् में विचरण है। आँखों को खुला रखकर विचरण करने से यह थोड़ा ही भिन्न है, बहुत ज्यादा नहीं। लेकिन ध्यान तो जगत् की इन आंतरिक अथवा बाह्य क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से परे का विषय है।

ध्यान केवल उन लोगों की बपौती नहीं, जो किसी एकान्त स्थान पर आँखें बन्द करके बैठ जाते हैं और ध्यान की अनुभूति हेतु विभिन्न क्रियायें या साधनायें करते हैं। यह तो ध्यान का एक तरीका है, जो राजयोग कहलाता है। वास्तव में ध्यान यहीं तक सीमित नहीं है। अपने दैनिक कर्तव्यों को करते हुये भी ध्यान की अवस्था में विचरण किया जाता है। ध्यान की अनुभूति को महसूस किया जा सकता है। ध्यान के ये अभ्यास कर्मयोग और भक्तियोग से सम्बन्धित हैं। किसी व्यक्ति का हाव-भाव भले ही विचित्र हो, उसके क्रियाकलाप कौतुकपूर्ण हों, लेकिन साथ ही यह भी संभव है कि वह आनन्द की परमावस्था में लीन हो। कोई व्यक्ति घास

काटते हुये, कार चलाते हुये या किसी महत्त्वपूर्ण योजना के क्रियान्वयन का निर्णय लेते हुये भी ध्यान की उच्च अवस्था में लीन हो सकता है। और संभवत: किसी अन्य व्यक्ति को उसकी इस अवस्था का पता ही न चले, जबतक उसने स्वयं उसी अवस्था का अनुभव न किया हो। अर्थात् हाव-भाव से यह कतई प्रकट नहीं हो सकता कि कोई सचमुच ध्यान कर रहा है या नहीं। किसी ज़ेन गुरु ने शायद इसी को समझाने हेतु कहा था–

कितना विचित्र है, कितना रहस्यमय है
कभी मैं लकड़ी काटता हूँ, कभी मैं पानी लाता हूँ।

कहने का तात्पर्य यह कि ध्यान के अनेक मार्ग हैं, इस बात का हमेशा ख्याल रखें। कुछ मार्ग ऐसे हैं जिनमें बाह्य जगत् के क्रियाकलापों (जैसे कर्मयोग) में भाग लेना पड़ता है। जबकि कुछ ऐसे मार्ग भी हैं जिनमें अंतर्जगत् की यात्रा करनी पड़ती है (जैसे राजयोग में) और इसलिए कुछ समय तक बाह्य क्रियाकलापों से छुट्टी लेनी पड़ती है। अभी हमारा मुख्य विषय राज योग सम्बन्धित ध्यान ही रहेगा।

मानव विकास

पिछले कुछ हजार वर्षों में मानव ने अत्यधिक तेजी से विकास किया है। इससे पहले मनुष्य खानाबदोश का जीवन जीता था तथा मुख्य रूप से अपने अस्तित्व को बनाये रखने में ही उसका सारा समय और शक्ति खर्च हो जाती थी। तब से लेकर

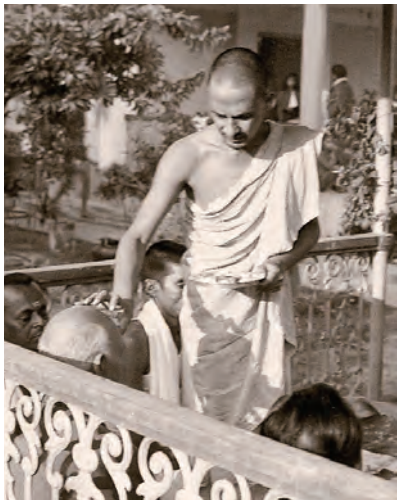

आज तक उसने अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुकूल प्रकृति पर अधिकाधिक नियंत्रण प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त की है। या यूँ कहें कि आज प्रकृति मानव की शत्रु होने की बजाय एक आज्ञाकारी सेविका बन गई है। यही कारण है कि आज आधुनिक मानव के पास जीवन रक्षा के अतिरिक्त भी अनेक विषयों पर चिंतन-मनन करने हेतु पर्याप्त समय और शक्ति है। इसके अतिरिक्त आधुनिक मानव अपने विकास की दिशा का निर्धारण स्वयं कर सकता है, इतनी क्षमता है उसके पास।

आज मानव शरीर एक बेहतर साधन सिद्ध हो रहा है तथा मन गहन विचारों को समझने में ज्यादा सक्षम है। यह विकास प्रक्रिया अभी भी निरंतर गतिमान है, पर ऐसा लगता है कि विकास का यह मार्ग और अधिक लम्बा नहीं। आज यह मार्ग अवरुद्ध होता दिखाई पड़ रहा है। बीच में खाई आ गई है और उसके बाद पुन: रास्ता साफ है। अब यदि और आगे बढ़ना है तो इस खाई को पार करने हेतु एक सेतु का निर्माण करना जरूरी है और यह जो सेतु है, वही ध्यान है। हर व्यक्ति विकास की एक अवस्था तक पहुँच चुका है, लेकिन इसके साथ ही यह भी सत्य है कि हमारा विकास एक तरफा है। ऐसा महसूस होता है कि हमारे जीवन में कुछ खालीपन या रिक्तता है, कोई चीज है जो खो गई है। यह जो रिक्तता है, यह जो खोया हुआ है या जो हमारे व्यक्तित्व का अधूरापन है, जो खोई हुई कड़ी है, वही है अंतरंग या आध्यात्मिक विकास। ध्यान का सार या निचोड़ भी यही है।

विकास निरंतर आगे बढ़ने की प्रक्रिया है—अपवित्रता से पवित्रता की ओर, अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर। आज हम इस विकास-मार्ग के चौराहे पर खड़े हैं। हम अपने आंतरिक जगत् की अवहेलना कर बाह्य जगत् के क्रियाकलापों में जुटे रहें अथवा बाह्य जगत् में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुये अपनी आंतरिक शक्तियों का अनुभव करें, उन्हें सक्रिय बनायें। ये दो पहलू हैं, दो रास्ते हैं और मार्ग हमें चुनना है। यदि हम पहले मार्ग का चुनाव करते हैं तो परिणाम होगा अव्यवस्था, असंतुलन, पीड़ा और कष्ट जैसा कि आज दुनिया में दिखाई पड़ रहा है। दूसरा मार्ग असीमित है, अनन्त है और इसकी संभावनायें भी अनन्त हैं, क्योंकि यह हमारे व्यक्तित्व के नवीन पक्षों को उजागर करता है, हमें चेतना के उच्च स्तर की ओर उन्मुख करता है तथा असीम आनन्द के साम्राज्य में

पहुँचा देता है। दूसरा मार्ग आध्यात्मिक मार्ग है। यह भौतिक जगत् के परित्याग की ओर उन्मुख नहीं करता बल्कि इसके विपरीत यह दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में वृद्धि, प्रसन्नता तथा उपलब्धि की ओर उन्मुख करता है।

विकास का यह मार्ग कोई नया पथ नहीं है, हर युग में लोग इससे परिचित थे। यह कोई ऐसा मार्ग नहीं जिसका अनुसरण कुछ सिरफिरे व्यक्ति ही करते थे। इसके विपरीत इस मार्ग का अनुसरण करने वाले बहुत ही व्यावहारिक लोग थे। वे संत, मनीषी और योगी थे, जो हर तरह के समाज, देश और काल में पैदा हुए थे। वे जानते थे कि हर व्यक्ति को अपनी आंतरिक शक्तियों को अनावृत करने हेतु इस मार्ग को अपनाना चाहिये। ईसा मसीह कहते थे–'ईश्वर का राज्य तुम्हारे अन्दर है।' कुछ इसी तरह का भाव गौतम बुद्ध ने व्यक्त किया–'अन्दर की ओर देख, तू ही शुद्ध चेतना है।' यूनानी लोग भी यही बात दुहराते थे। वे अपने मन्दिर के प्रवेश द्वार पर एक वाक्य लिखते थे–'रे इंसान! खुद को जान और फिर तू सारे जग को जान लेगा।' श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण भी इसी बात की पुष्टि करते हैं–'ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है।' रामकृष्ण परमहंस इसको यूँ समझाते थे–'कस्तूरी-मृग कस्तूरी की गंध को सारे जग में खोजता है जबकि वह उसी के भीतर निहित है।'

ये महापुरुष भिन्न-भिन्न युगों में और भिन्न-भिन्न देशों में पैदा हुये। उनका सामाजिक परिवेश भिन्न था, भाषा भिन्न थी, लेकिन सभी ने एक ही विचार को, एक ही सिद्धान्त को प्रस्तुत किया, भले ही उनके कहने के ढंग या शब्दों में भिन्नता थी। यह कैसे सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर एकदम स्पष्ट है। उन्होंने जीवन के एक आधारभूत सत्य का प्रतिपादन मात्र किया है। वे जानते थे कि मन की गहन पर्तों के नीचे छिपे चेतना के उच्च स्तर तक पहुँचा जा सकता है। वे यह भी जानते थे कि हर व्यक्ति अपने अनुभव से इसे जान सकता है, समझ सकता है, सीख सकता है और फिर इसके बाद अपने ज्ञान के आधार पर इसे दूसरों को देने हेतु प्रयत्न कर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर अनंत सम्भावनायें छिपी पड़ी हैं, अनन्त शक्तियाँ और प्रतिभायें प्रसुप्त हैं, मात्र आवश्यकता है उन्हें ढूँढ निकालने हेतु प्रयत्न करने की। इन्हें खोज निकालने के लिए हमें अन्तर्जगत् के अज्ञात क्षेत्रों को उजागर करना है। जैसे हम किसी अज्ञात प्रदेश की यात्रा करते हैं तो हमें पता नहीं होता कि हम कहाँ जा रहे हैं और कहाँ पहुँचेंगे। उदाहरण के लिए विश्व प्रसिद्ध मार्को पोलो की यात्रा को ही लें। मार्को पोलो को अपनी यात्रा के दौरान अनेक विस्मयकारी अनुभव हुये और अंत में वह अपनी मंजिल चीन तक पहुँच ही गया। ध्यान भी कुछ इसी तरह है। यह अन्तर्यात्रा का मार्ग है। इस अन्तर्यात्रा में तुम्हें जो आश्चर्यजनक अनुभव होंगे, उसके बारे में अभी कुछ नहीं कह सकते। लेकिन इतना निश्चित जानो कि उनका अनुभव होगा और जरूर होगा। मार्को पोलो भी जब वापस आकर अपनी यात्रा के रोमांचक अनुभव और आश्चर्यजनक कहानियों का बखान लोगों के सामने

करता था तो लोग विश्वास नहीं करते थे। ध्यान के साथ भी यही बात है। जब भी कोई व्यक्ति अपने ध्यान के अनुभवों का वर्णन करता है तो लोग विश्वास नहीं करते, जब तक कि उन्हें भी उसी प्रकार का अनुभव न हो।

वास्तव में निर्णय तुम्हें लेना है। तुम चाहो तो बाह्य जगत् की धमा-चौकड़ी में सारा समय व्यस्त रहो, जैसा आज अधिकांश लोग करते हैं, या फिर अन्तर्जगत् की ओर चलना प्रारम्भ करो और उन लोगों का अनुसरण करो जो पहले ही इस मार्ग में अग्रसर हैं। इस चुनाव में कोई दिक्कत नहीं, कोई कठिनाई नहीं। बड़ा सरल है इस रास्ते को चुनना, क्योंकि तुम्हें अपनी वर्तमान जीवन शैली का परित्याग नहीं करना है। इस अन्तर्यात्रा में मात्र आत्म-गवेषणा हेतु अपनी रुचि को जगाना है और ध्यान एवं अन्य योग साधनाओं द्वारा उसे पुष्ट बनाना है।

हम सभी अपने को धोखा दे रहे हैं, कूपमंडूक की तरह। हम अपने चारों ओर जितना देखते हैं, उतने को ही सब कुछ मान लेते हैं। हम सोचते हैं कि आज हमारा व्यक्तित्व जो कुछ है, वही हमारी पूर्णता है। हमें पता ही नहीं कि सबसे आश्चर्यजनक चमत्कार तो हमारे भीतर छिपा पड़ा है। एक शांत झील की कल्पना करो जिसमें पूर्णिमा के चाँद का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखलाई देता है। चाँद का यह प्रतिबिम्ब यथार्थ लगता है। यदि आकाश में उदित चाँद का भान न रहे तो अनेक लोग इस प्रतिबिम्ब को ही वास्तविक चाँद समझने की गलती कर सकते हैं। चाँद के बिना इस प्रतिबिम्ब का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता, जबकि चाँद बिना प्रतिबिम्ब के भी अस्तित्वमान रहता है। ठीक यही बात हमारे व्यक्तित्व के साथ भी चरितार्थ होती है। हम केवल अपने व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब मात्र देख सकते हैं और इसे ही

यथार्थ मानने की गलती कर बैठते हैं। हमें इसका भान तक नहीं होता कि आज जिसे हम अपना यथार्थ मानते हैं, वास्तव में उसका आधार अन्दर गहराई में है। इस गहराई में डुबकी लगाना, अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना ही गहन ध्यान है।

प्राचीन संत-महात्माओं का कथन है कि हमारी अधिकांश शक्ति तो छिपी पड़ी है। आज अनेक प्रख्यात वैज्ञानिक भी इस बात का समर्थन कर रहे हैं। उनका कहना है कि आज जितना हम जानते हैं, उससे कहीं अधिक शक्ति और प्रतिभा हर व्यक्ति के भीतर छिपी पड़ी है। निश्चय ही हम अपनी क्षमता के बहुत तुच्छ अंश का ही उपयोग कर पा रहे हैं। आज वैज्ञानिक कहते हैं कि भविष्य में जो महान् खोजें होंगी, वे आंतरिक होंगी। बाह्य जगत् से सम्बन्धित शायद ही कोई खोज हो, और यही मानव-विकास की सही दिशा होगी।

मन की गहराइयाँ

योग और आधुनिक मनोविज्ञान, दोनों ही मन के गहन पक्षों की विशद जानकारी देते हैं। हममें से अनेक लोग अवचेतन तथा अचेतन मन के विषय में जानते हैं, पर ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जो यही मानते हैं कि मन किसी समय विशेष में केवल चेतन स्तर के विषयों पर विचार करता है। वे यह महसूस ही नहीं कर पाते कि मन एक विशाल कम्प्यूटर की तरह है जो निरंतर हजारों-लाखों आँकड़े ग्रहण करता है, उनका विश्लेषण करता है, उन्हें संक्षिप्त करता है तथा अनावश्यक होने पर उन्हें अमान्य भी कर देता है। मन के भीतर निहित जिन सूचनाओं को हम नहीं देख पाते, वे अवचेतन और अचेतन के अंतर्गत आती हैं। प्राय: मन की तुलना हिमशैल से की जाती है। चेतन मन हिमशैल का वह भाग है जो जल की सतह के ऊपर रहता है। यह हिमशैल के दसवें भाग के लगभग होता है, जबकि सतह के नीचे पड़े नौ भागों में अवचेतन तथा अचेतन मन आते हैं। फिर भी यह एक अनुमान मात्र है। वास्तव में देखा जाये तो सतह के नीचे जो छिपा पड़ा है उसकी कल्पना हम स्वप्न में भी नहीं कर सकते।

मन अपने अवचेतन एवं अचेतन स्तरों में हमारे अस्तित्व के अनेक तथ्यों को संगृहीत करके रखता है। यह हमारी आधारभूत आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों तथा हमारे बौद्धिक तथा विवेकपूर्ण पहलुओं को भी इकट्ठा करके रखता है। यह पूर्व की उन स्मृतियों को भी संगृहीत करके रखता है जिनसे हमारा कोई वर्त्तमान सम्बन्ध नहीं है। यह ऐसे विचारों, दृश्यों तथा स्वप्नों का भण्डार-गृह है जो किसी भी रोमांचक उपन्यास से ज्यादा विस्मयकारी हैं। योग और ध्यान का उद्देश्य मन की इन्हीं अनजान पर्तों को उजागर करना है।

हम अपने मन की गहराई को जान-समझकर ही स्वयं तथा अपने चारों ओर की दुनिया को जान-समझ सकते हैं। अगर हम बाह्य जगत् को एक अनन्त वृत्त

मान लें जो देश-काल का द्योतक है तो इसका केन्द्र अनन्तता का सूचक है जो समय की सीमा से परे है। हम अपने जीवन में इस वृत्त की परिधि पर ही रह जाते हैं। इसके भीतर प्रवेश करके क्रेन्द्र तक पहुँचना हमें असंभव जान पड़ता है। वृत्त के भीतर पहुँचने तथा बाधाओं को दूर करने का एकमात्र उपाय है—अपने ही मन की खोज। हम मन की गहराई में जितना अधिक उतरते हैं, उतना ही अधिक वृत्त के केन्द्र के निकट पहुँचते हैं। जब हम वृत्त के केन्द्र पर पहुँच जाते हैं तो उसे ही आत्म-साक्षात्कार कहते हैं।

सभी जानते हैं कि हर प्रकार की यात्रा के लिए कोई-न-कोई वाहन जरूरी है। यदि हमें समीप के बगीचे तक जाना है तो हमारे पैर ही वाहन का कार्य करते हैं। यदि हमें आस-पास के शहर तक जाना होता है तो हम बस, कार या ट्रेन से जाते हैं और यदि हमें समुद्र पार के देशों की यात्रा करनी होती है, तब हम पानी के जहाज या हवाई जहाज का उपयोग करते हैं। ठीक इसी प्रकार अन्तर्जगत् की यात्रा हेतु भी एक वाहन जरूरी है और यह वाहन है ध्यान।

ध्यान की आधारभूत प्रक्रिया

वैसे तो ध्यान की विधियाँ सरल हैं तथा उन्हें आसानी से सीखा जा सकता है, फिर भी यदि समर्पण, श्रद्धा और विश्वास के साथ उनका नियमित अभ्यास न किया जाये तो कोई फल प्राप्त नहीं होगा। अनेक लोगों का ऐसा विश्वास है कि ध्यान के अनुभव की प्राप्ति हेतु बहुत-सी विधियों को जानना जरूरी है, परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि वे एक का भी अभ्यास गंभीरतापूर्वक नहीं करते और परिणामस्वरूप उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यह अति सामान्य बात है क्योंकि आदतवश हम सोचते हैं कि जितने अधिक तथ्यों और तकनीकों को हम संगृहीत करेंगे, उतने ही अधिक ज्ञानी कहलायेंगे। बौद्धिक दृष्टिकोण से भले ही यह कुछ हद तक सही हो, लेकिन जहाँ तक ध्यान और योग का सवाल है, निश्चय ही यह सत्य नहीं है। कोई व्यक्ति बौद्धिक स्तर पर भले ही कुछ न जानता हो, लेकिन ध्यान की मात्र एक विधि उसे अगर मालूम हो और वह इस विधि का पूरी श्रद्धा के साथ नियमित अभ्यास करे तो परिणामस्वरूप वह ध्यान का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। इसलिए ख्याल रहे, सफलता बौद्धिक ज्ञान पर आधारित नहीं होती। यदि हम इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें तो ऐसे अनेक व्यक्तियों के उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने ध्यान के चरमोत्कर्ष का अनुभव किया है। हर व्यक्ति के पास मानसिक शक्ति रूपी निधि है, चाहे वह अमीर हो या गरीब, विद्वान् हो या अनपढ़, युवा हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष। मन के इस खजाने की खोज करने तथा उसे जानने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त है साधना और अभ्यास। ध्यान के आनन्द तथा परम ज्ञान का अनुभव प्राप्त करने का यही एकमात्र उपाय है।

जैसा मैंने पहले बतलाया, ध्यान की दो प्रमुख शाखायें हैं। पहली है स्थैतिक और दूसरी है गत्यात्मक। गत्यात्मक ध्यान के अंतर्गत हम अपने दैनिक जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों, यथा चलना-फिरना, बातचीत करना आदि भी रख सकते हैं। यह कर्मयोग और भक्तियोग के अंतर्गत आता है। इसका उद्देश्य है बाह्य जगत् की घटनाओं में सक्रिय रूप से भाग लेते हुये भी ध्यानमग्न रहना। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि अपने काम को जैसे-तैसे निपटा देना या सोते हुये चलना। इसके विपरीत प्रत्येक कार्य को अधिक उत्साह, कुशलता तथा सजगता के साथ पूर्ण करना इसका महत्त्वपूर्ण अंग है।

ध्यान की स्थैतिक विधियाँ राजयोग के अंतर्गत आती हैं। इसके लिए दैनिक जीवन में एक निश्चित अवधि खास इसी उद्देश्य अर्थात् आत्म-विश्लेषण हेतु तय कर दी जाती है और फिर प्रतिदिन नियमित रूप से उतने समय तक आत्म-विश्लेषण किया जाता है। वस्तुत: देखा जाये तो स्थैतिक शब्द सही नहीं है, क्योंकि इसमें शरीर मात्र ही स्थिर रहता है। सम्भवत: उस समय आंतरिक वातावरण में विभिन्न क्रियाकलाप तेजी से हो रहे हों।

ध्यान के लिए शारीरिक विक्षेपों को दूर करना पहली आवश्यकता है। अधिकांश लोगों के लिए तो एक मिनट भी स्थिर रह पाना संभव नहीं। उन्हें या तो शरीर में दर्द होने लगता है या शरीर खुजलाने या हिलाने-डुलाने की इच्छा होती है। परिणामस्वरूप सजगता बहिर्मुखी हो जाती है और यह आवश्यकता के ठीक

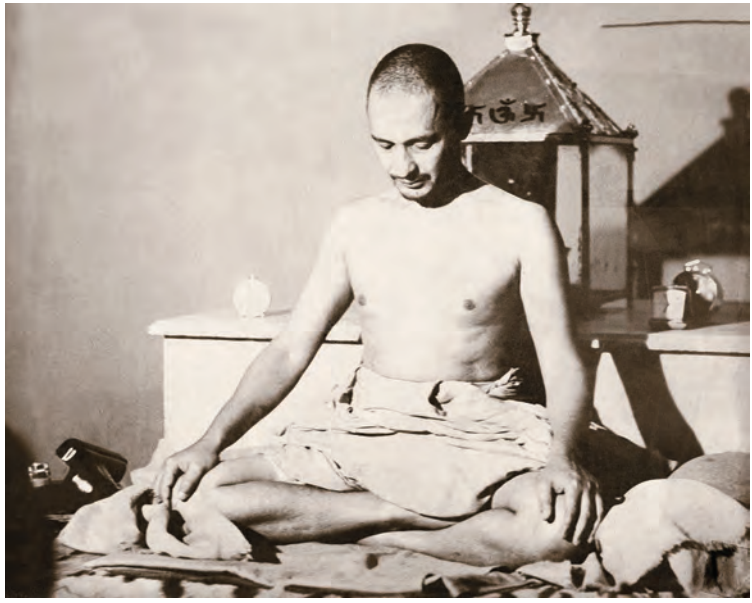

विपरीत है, क्योंकि ध्यान के दौरान हमारा उद्देश्य सजगता को मन के क्रियाकलापों की ओर दिशांतरित करना अर्थात् अन्तर्मुखी करना है।

इसके बाद मन की शांत और शिथिल अवस्था की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। अधिकांश लोगों का मन तो तूफान से घिरे समुद्र की तरह होता है। यदि सतह से नीचे देखना है तो पहले सतह से ऊपर की तूफानी तरंगों को शांत करना होगा। यह केवल सजगता के द्वारा सम्भव है। दूसरे शब्दों में कहें तो हम एक इष्ट विषय या विचार प्रक्रिया के प्रति सजग रहने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए अभ्यास जरूरी है और अन्ततः सजगता को अन्य सभी विषयों से हटाकर एक विषय पर केन्द्रित करना सम्भव हो जाता है। यह एकाग्रता मन की विभिन्न गहन पर्तों को भेदने में सहायता करती है। यदि तीर तीक्ष्ण न हो तो वह लक्ष्य का भेदन नहीं कर पायेगा, जबकि एकाग्रतापूर्वक निशाना साध कर छोड़ा गया तेज धार वाला तीर निश्चय ही लक्ष्य भेदन करेगा। उसी प्रकार सजगता की एकाग्र अवस्था ही अन्तर्गामी यात्रा में वाहन का कार्य करती है। सजगता की यह स्थिति ध्यानाभ्यासी को नींद की अचेतन अवस्था में जाने से भी रोकती है। जब व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से शांत एवं शिथिल होकर ध्यान करने का प्रयास करता है, तब नींद आने की संभावना अधिक रहती है, लेकिन यह एकाग्र स्थिति हमारी सजगता के लिए निरंतर चेतावनी की तरह कार्य करती है।

अनेक साधक ध्यान के समय एकाग्र होने का जरूरत से ज्यादा प्रयास करते हैं। पर ख्याल रहे, अशांत, चंचल और विक्षिप्त मन में एकाग्रता का अवतरण इतना सरल नहीं है। एकाग्रता के लिए अत्यधिक जोर लगाने का परिणाम यह होता है कि लोग शांत और शिथिल होने के बजाय और अधिक तनावग्रस्त हो जाते हैं। इस परिस्थिति में ध्यान लगाना असंभव हो जाता है। यही कारण है कि मैं जबरदस्ती मन को एकाग्र करने की सलाह नहीं देता। इसके बदले किसी विषय-वस्तु या विचार प्रक्रिया के प्रति अपनी क्षमतानुकूल सजग रहने का निर्देश दिया जाता है। अर्थात् यदि मन यहाँ-वहाँ भटकता है तो उसका विरोध मत करो, उसे रोको नहीं, बस उस विषय-वस्तु अथवा विचार-प्रक्रिया के प्रति सजग बने रहने का प्रयास करो। इस तरह न केवल तुम एकाग्रचित्त होगे, साथ ही मानसिक और शारीरिक शिथिलता भी अनुभव करोगे।

ऐसी अनेक विषय-वस्तुएँ हैं जिनका उपयोग एकाग्रता के अभ्यास के लिए किया जा सकता है। वह वस्तु क्या है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। मतलब किसी भी ऐसी विषय-वस्तु को एकाग्रता हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है जिस पर मन सरलता से टिक सके, जैसे श्वसन प्रक्रिया, ॐ जैसा कोई मंत्र, किसी महात्मा अथवा गुरु का चित्र या नासिका का अग्र भाग। ऐसा कोई भी प्रतीक चुना जा सकता है जो आपको पसंद हो या जो आपको आकर्षित करे। अपनी विचार-प्रक्रिया के

प्रति सजगता बनाये रखना भी उत्तम है। लेकिन एक बात का हमेशा ख्याल रहे, ये सारे ध्यान के साधन हैं, स्वत: ध्यान नहीं।

हमारे मन के विभिन्न स्तरों में निरंतर कोलाहल रहता है। सामान्यत: ये आंतरिक विक्षेप तथा बहिर्मुखी जीवनशैली, दोनों मिलकर हमें अपने मन के भीतर झाँकने से रोकते हैं। ध्यान के विभिन्न अभ्यास आंतरिक एवं बाह्य विक्षेपों के पर्दों को हटाने के साधन हैं और इस प्रकार हमें मन के भीतर झाँकने का मौका मिलता है। अधिकांश लोग भावनात्मक असंतुलन से घिरे रहते हैं। यह ध्यान में एक गंभीर बाधा है। यहाँ तक कि जब हम अकेले रहते हैं तब भी चित्त को एकाग्र करने में कठिनाई होती है। हम निरंतर चिंताओं, परेशानियों, राग-द्वेष आदि अनेक भावनात्मक विक्षेपों से ग्रस्त रहते हैं। इनसे रातों-रात छुटकारा पाना संभव नहीं, इसके लिए आवश्यकता है समय की और नियमित अभ्यास की।

ध्यान के अभ्यास मन की अगम्य पर्तों में छिपी समस्याओं, द्वन्द्वों तथा अन्य विक्षेपों के निराकरण के उत्कृष्ट साधन हैं। एक बार यदि मन के इन विघटनकारी तत्त्वों से हमारा सामना हो जाये तो वे स्वत: ही हटने लगेंगे। प्रत्येक व्यक्ति अपना मनोचिकित्सक स्वयं बन सकता है। जैसे-जैसे इन समस्याओं का निराकरण होता जायेगा, वैसे-वैसे व्यक्ति का जीवन उत्साह और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति बनता जायेगा। सारी जीवन-धारा ही परिवर्तित हो जायेगी।

ध्यान के आनन्द को जानना और महसूस करना हर व्यक्ति के लिए संभव है, पर इसके लिए समय और प्रयास आवश्यक है। यह संभव नहीं कि कोई व्यक्ति पहली बार ध्यान करने बैठे और ध्यान लग जाये। यदि ऐसा होता है तो बहुत आश्चर्यजनक घटना होगी। मेरी जानकारी में तो ऐसा कभी घटित नहीं हुआ है। इसके लिए निरंतर एकनिष्ठ अभ्यास जरूरी है। कितना समय लगेगा, यह व्यक्ति पर निर्भर करता है। इतना निश्चित जानो कि कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं जायेगा।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जिन विषयों का हमें अनुभव नहीं होता, हम उनके प्रति संशयशील रहते हैं। ध्यान के प्रति संशयशील और अविश्वासी होना तो और भी सरल है, क्योंकि यह अन्य सिद्धांतों की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म है। लोगों की समझ में नहीं आता कि मात्र आँखों को बन्द कर लेने से सोने के अलावा और क्या मिलेगा। यह स्वाभाविक है और व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा ही ऐसे संशय धीरे-धीरे दूर होते हैं। तुम भले ही ध्यान पर लिखी अनेक पुस्तकें पढ़ लो, तब भी ये संशय दूर नहीं होंगे। मात्र व्यक्तिगत अनुभूति से ही संशय की दीवारें ढह सकती हैं। भले ही वह अनुभूति क्षणिक हो, पर उतने मात्र से ही तुम शक्ति, ज्ञान और आनन्द की उस अपरिचित सम्पत्ति की झलक पा जाते हो, जो तुम्हारे भीतर छिपी है और तुम्हारी अपनी निजी सम्पत्ति है।

–'तंत्र, क्रिया और योगविद्या' से उद्धृत

प्रत्याहार–घेरण्ड संहिता के आलोक में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

इन्द्रियों के माध्यम से मन को नियन्त्रित करने की प्रक्रिया ही प्रत्याहार कहलाती है। घेरण्ड संहिता के चतुर्थ अध्याय में इसी प्रत्याहार की शिक्षा महर्षि घेरण्ड ने अपने शिष्य राजा चण्डकपालि को संक्षेप में दी है। उनका विचार है कि यदि हम अपने मन को इन्द्रियों की अनुभूति से पृथक् कर दें, तो उन विषयों एवं पदार्थों का प्रभाव स्वत: समाप्त हो जायेगा जो मन में किसी प्रकार की बाह्य नकारात्मक या सकारात्मक भावना को जाग्रत कर उसके धीरज को समाप्त कर देते हैं। तब मानसिक अन्तर्मुखता की अवस्था स्वत: प्राप्त होगी।

इसमें पहले एक बात को समझ लिया जाए कि जब यह घोषणा की गयी है कि धैर्य की प्राप्ति होती है, तब इसका अर्थ हुआ कि पहले से ही यह अनुमान लगाया गया है या जाना गया है कि जीवन में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनका सामना होने पर मनुष्य अपना धैर्य खो बैठता है। महर्षि घेरण्ड ने किस दृष्टिकोण से इस विचारधारा को सामने रखा, यह कहना तो कठिन है, लेकिन अपने स्तर पर यदि हम देखें और अनुमान लगायें कि मनुष्य अपने जीवन में धैर्य कब खोता है, तो शायद इसके पीछे कोई मनोवैज्ञानिक रहस्य मिल जाए और इस रहस्य के सूत्र को पकड़कर फिर प्रत्याहार के वर्णन में आगे बढ़ा जाए।

आसक्तियों का प्रभाव

योग के अनुसार मनुष्य आसक्ति के कारण अपना धैर्य खोता है। विशेषकर आसक्ति का वह रूप जिसमें व्यक्तिगत चाह, कामना, स्वार्थ एवं सन्तुष्टि की भावना छुपी हो। आसक्ति का सम्बन्ध इन सब तत्त्वों के साथ है क्योंकि ये सब एक साथ मिलकर अपने बाह्य रूप में आसक्ति को जन्म देते हैं। स्वार्थ की भावना, महत्त्वाकांक्षा और अहंकार के संयोग से आसक्ति का जन्म होता है।

महत्त्वाकांक्षा और अहंकार से आसक्ति कैसे जन्म लेती है? महत्त्वाकांक्षा हमारी एक ऐसी कामना है जिसमें हम स्वयं को एक दूसरे रूप में देखना चाहते हैं। गरीब व्यक्ति खुद को एक लखपति या करोड़पति के रूप में देखना चाहता है। स्वार्थी व्यक्ति जीवन में अपनी सभी कामनाओं की पूर्ति चाहता है। छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी वस्तु को प्राप्त कर वह अपने अहंकार को बढ़ाने की कामना रखता है और जहाँ इस प्रकार का स्वार्थ छिपा हो, वहाँ उसकी पूर्ति के लिए आसक्ति जन्म लेती है।

अहंकार के द्वारा आसक्ति का जन्म होता है क्योंकि अहंकार में अपने आकार को बड़ा करने की इच्छा छिपी है। 'मैं' का जो रूप है, उसके द्वारा दूसरों को दबाने की

इच्छा छिपी है, दूसरे अनुभवों को पीछे हटाने की शक्ति छिपी है। इस प्रकार जब हम अपने मन को देखते हैं, मन में उत्पन्न अवस्थाओं को देखते हैं, तब आसक्ति किसी-न-किसी रूप में अवश्य दिखलायी पड़ती है। इसी आसक्ति के कारण हमारी मानसिक शक्तियाँ एकाग्र न रहकर विक्षिप्त और चंचल हो जाती हैं। कहते हैं कि चंचलता मन का स्वभाव है, लेकिन मन की स्थिर अवस्था में मन को जो विश्राम प्राप्त होता है वह चंचल अवस्था में नहीं। जिस प्रकार एक बालक दिनभर बहुत चंचल रहता है, दौड़ता-कूदता है, लेकिन एक समय आता है जब वह शान्त होकर सो जाता है, उसी प्रकार मन का स्वभाव भले ही चंचल हो, लेकिन मन की मूल स्थिति है शान्त, जिसमें वह स्वयं को पुन: शक्ति से भरता है।

जब हमारी चेतना, सजगता और बुद्धि इस चंचलता के आवेग में आकर अपना सन्तुलन खो बैठती हैं, तब धैर्य की कमी होती है। जब हम भावना के प्रवाह में बहकर अपना सन्तुलन खो देते हैं, तब भावना के अनुसार तत्काल उस कर्म को करना चाहते हैं जिससे हमारे स्वार्थ की पूर्ति हो, कामना की पूर्ति हो। मन को चंचल बनाने और उस स्वार्थपूर्ण कामना पूर्ति के लिए इन्द्रियाँ अपनी शक्ति का प्रयोग करती हैं। इन्द्रियों की शक्ति है सुख की इच्छा, सुख की खोज। छोटी-छोटी घटनाओं में भी यह बात दिखलायी देती है। यदि कोई व्यक्ति जोर-जोर से बिना किसी ताल के नगाड़ा पीटने लगे तो लोग उसे चुप करा देंगे। लेकिन यदि कोई जानकार व्यक्ति गाने-बजाने लगे तो हम अपने आपको उसी में लीन कर देंगे, क्योंकि वह संगीत कर्णप्रिय होता है। श्रवण इन्द्रिय के भोग की एक सीमा है, जहाँ तक उसे अच्छा लगता है, उसके स्वार्थ की पूर्ति होती है। ठीक इसी प्रकार सभी इन्द्रियाँ सुख-भोग

की कामना करती हैं। आँखें हमेशा अच्छी चीजें देखना चाहती हैं; जीभ हमेशा अच्छा स्वाद लेना चाहती है; त्वचा हमेशा एक सुखद स्पर्श का अनुभव करना चाहती है।

एकाग्रता और धैर्य की प्राप्ति

इस प्रकार सभी इन्द्रियाँ, चाहे ज्ञानेन्द्रियाँ हों या कर्मेन्द्रियाँ, विक्षिप्त अवस्था में मन की सजगता के एक अंश को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। यदि पूरी सजगता एक ओर आकृष्ट हो जाए, एक ही इन्द्रिय के पीछे जाए और उस इन्द्रिय से प्राप्त ज्ञान को हम जानें, समझें तो यह चेतना के विकास की प्रक्रिया हो सकती है। लेकिन हमारी सजगता भी अनेक दिशाओं में, अनेक इन्द्रियों में बँट जाती है, बिखर जाती है, जिससे हमें ज्ञान प्राप्ति के बदले तनाव, क्षोभ और निराशा की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इन्द्रियाँ भी धैर्य खोने का एक कारण बन जाती हैं।

हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे हमारे कहे अनुसार रहें, हमारे कहे अनुसार कार्य करें, हमारे कहे अनुसार चलें। अपने सहकर्मियों से भी हमें यह अपेक्षा रहती है कि वे हमें अच्छा व्यक्ति मानें, हममें हर प्रकार के गुण देखें और हमारा अनुसरण करें। परिवार के सदस्यों के साथ भी आदमी एक विशेष प्रकार का नकाब स्वयं ही पहन लेता है और यह नकाब पहने-पहने वह अपना बाह्य जीवन व्यतीत करता है।

ये सब ऐसे कारण माने गये हैं जिनसे मनुष्य अपने अन्त:करण का सन्तुलन खो बैठता है। चेतना के विकास में ये विघ्न के रूप में उपस्थित होने लगते हैं। इसी कारण महर्षि घेरण्ड ने स्वीकार किया है कि मानसिक सन्तुलन नहीं बिगड़ना चाहिए, धीरज नहीं खोना चाहिए और सजगता का अभाव नहीं होना चाहिए। इसी धीरज की प्राप्ति के लिए वे राजा चण्डकपालि को निम्नलिखित उपदेश देते हैं–

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम्॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥
पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं वा भयानकम्।
मनस्तस्मान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥
शीतं चापि तथा चोष्णं यन्मनस्संस्पर्शयोगत:।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्॥
सुगन्धे वापि दुर्गन्धे मनो घ्राणेषु जायते।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्॥
मधुराम्लकतिक्तादिरसं गतं यदा मन:।
तस्मात्प्रत्याहरदेतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि अब मैं प्रत्याहार का वर्णन करता हूँ जिसे करने से कामादि शत्रुओं का नाश होता है। जहाँ-जहाँ यह चंचल मन विचरण करे, इसे वहीं-वहीं से लौटाने का प्रयत्न करते हुए आत्मा के वश में करें। पुरस्कार, तिरस्कार, सुनने में सुखद, सुनने में अरुचिकर वचनों से मन को हटाकर आत्मा के वश में करें। गर्मी और ठण्ढ के जो अनुभव मन को विचलित करते हैं, उनसे मन को हटा लें। सुगन्ध और दुर्गन्ध से मन को हटा लें। मधुर, अम्ल, तिक्त आदि रसों की ओर मन आकृष्ट हो तो उसे वहाँ से हटा कर आत्मा के वशीभूत करें। यही प्रत्याहार है।

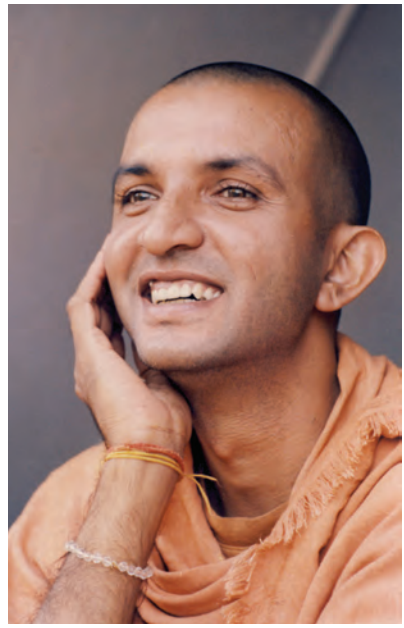

विषम परिस्थितियों में भी सामान्य मन:स्थिति को बनाये रखना प्रत्याहार की साधना है। अर्थात् न तो प्रसिद्धि के समय गर्व करना है और न सुख के समय खुशी प्रकट करनी है, न दु:ख में उदास होना है और न अपमानजनक स्थिति में क्रुद्ध होना है।

जब कभी मन इधर-उधर भागने का प्रयत्न करे और अपनी एकाग्रता को खोने लग जाए, तब उस समय अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति से मन को पुन: अपने स्थान में ले आओ। जो व्यक्ति परिस्थिति के अनुसार जीता है, उसके लिए कोई समस्या ही नहीं है, क्योंकि वह फिर समय के प्रतिबन्ध के अनुसार ही अपना कार्य करता और जीवन बिताता है। अगर मनमौजी व्यक्ति के मन में यह जागरूकता आ जाए कि मैं ठीक नहीं कर रहा हूँ तो उसे किस प्रकार प्रत्याहार का अभ्यास करना चाहिए?

यदि मन असमय मनोरंजन की तरफ जाए और उस समय यह सजगता बनी रहे कि यह समय मनोरंजन के लिए नहीं है, तो इसी सजगता से संकल्प शक्ति को जाग्रत करके, परिस्थिति का ख्याल करते हुए, अपनी सीमा का ख्याल करते हुए स्वयं को नियन्त्रण में रखना चाहिए। स्वयं के भीतर एक आन्तरिक समझ को विकसित करना चाहिए, लेकिन हमारे भीतर यह समझ कैसे पैदा होगी? हम किससे समझेंगे? सजगता का तो अभाव है। हम अपनी ही इच्छा को नहीं जानते। केवल उसके लक्षण को देखते हैं कामना के रूप में। वह समझ कैसे आयेगी?

आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया

इसका तरीका योग ने निकाला है। योग कहता है कि सबसे पहले अपनी कमजोरियों को पहचानने का प्रयत्न करो। आत्म-निरीक्षण के द्वारा यह देख लो कि किस परिस्थिति में तुम अपना सन्तुलन और धैर्य खो बैठते हो? कब निराशा का प्रभाव तुम पर पड़ने लगता है? जब आत्म-निरीक्षण के द्वारा यह बात मालूम पड़ जायेगी, तब चेतना का विस्तार कर, चेतना को जाग्रत कर उस दबावपूर्ण नकारात्मक स्थिति से तुम अपने आपको अलग कर पाओगे, और जैसे ही यह अलगाव होगा, सुख-शान्ति तुम्हारे चरणों में लोटेंगी।

आत्म-निरीक्षण कैसे किया जाए? इसका बहुत सरल तरीका है। रात्रि के समय जब सोने के लिए बिस्तर पर जाओ, तब अपनी पूरी दिनचर्या को एक बार मानसिक दृष्टि से देख लो और यह भी देख लो कि तुमने कहाँ-कहाँ पर प्रतिक्रिया व्यक्त की। जहाँ पर तुमने प्रतिक्रिया व्यक्त की, वहाँ अवश्य तुम्हारी कोई कमजोरी है, क्योंकि प्रतिक्रिया तभी होती है जब हमें किसी प्रकार की चोट पहुँचती है और हम उस चोट को सहन नहीं कर पाते। हम अपनी उस धारणा को, चाहे वह स्वयं के सम्बन्ध में हो या दूसरों के सम्बन्ध में, टूटते नहीं देख सकते। इसकी शुरुआत होती है छोटी-छोटी चीजों से, अन्त होता है बड़ी चीजों पर। अत: यदि हमें अपनी कमजोरी मालूम पड़ जाए, उस कमजोरी का कारण मालूम पड़ जाए कि किस परिस्थिति में हम प्रतिक्रिया करते हैं, तब उस कमजोरी का ख्याल करते हुए अपने कर्मों, विचारों और व्यवहार को बदलने का प्रयास किया जा सकता है। इस प्रकार आत्म-निरीक्षण होता है अपने कर्मों के माध्यम से।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है स्वयं की इन्द्रिय अनुभूतियों को देखने की। मुझे इन्द्रियों द्वारा किस प्रकार के अनुभव प्राप्त हो रहे हैं। पहले एक इन्द्रिय का ख्याल करना, फिर दो का, फिर तीन का, फिर चार का और अन्त में पाँचों का। परन्तु केवल देखना नहीं है, बल्कि हर इन्द्रिय की कार्य परिधि में जो चीज दिखलायी दे, जिस चीज का अनुभव हो, उसकी सजगता रहनी चाहिए। वास्तव में यह बहुत कठिन क्रिया है, क्योंकि मनुष्य की खोपड़ी घड़ी के काँटे जैसा व्यवहार करती है। अर्थात् घूमना तो चाहिए चारों तरफ,

लेकिन हम एक जगह रुक जाते हैं, फिर दूसरी जगह, फिर तीसरी जगह और यह क्रम चलता रहता है। एक ही दृष्टि में अनुभूति के सम्पूर्ण क्षेत्र को नहीं देख पाते।

हर मिनट घड़ी के काँटे की तरह जो रुकने की क्रिया होती रहती है, यह सामान्य स्थिति है, प्रत्याहार की स्थिति नहीं है। प्रत्याहार की स्थिति में तो हम सेकण्ड के काँटे की तरह आधे से भी कम समय में पूरा चक्कर लगा लेते हैं और हमारी चेतना की ग्रहणशीलता भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। जब हमारी चेतना की ग्रहणशीलता बढ़ जाती है, तब फिर हम अपने आपको एक बिन्दु पर एकाग्र कर पाते हैं और यह स्थिति हो जाती है धारणा की। बहुत-से लोग प्रत्याहार का अर्थ लगाते हैं अपनी इन्द्रियों को भीतर समेटना, जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने कवच के भीतर समेटता है। लेकिन यह प्रत्याहार की विधि नहीं है।

प्रत्याहार की प्रथम अवस्था में चेतना को सेकण्ड के काँटे की तरह घुमाकर पूरे मनस् क्षेत्र को एक बार में, एक दृष्टि में देखने का प्रयास किया जाता है। द्वितीय अवस्था में सजगता को जोड़ा जाता है। अब इसके बाद तृतीय अवस्था है सूक्ष्म अनुभवों को देखने की, अर्थात् मन को देखने की।

मन का द्रष्टा बनने के लिए सबसे पहले उन विचारों को देखते हैं जो मन में उठ रहे हैं। उसके बाद यह जानने-समझने का प्रयत्न करते हैं कि जो विचार मुझे सामने दिखलायी दे रहा है, उसे मानस पटल में लाने के पीछे कौन-सा कारण है। उस कारण को विचार रूप में देखना, फिर उसके कारण को देखना और फिर उसके भी कारण को देखना। इस प्रकार एक सतही विचार को पकड़कर विचार क्षेत्र में गहराई तक जाना, जहाँ पर विचार उत्पन्न हुआ है, जहाँ पर विचार का सम्बन्ध हमारे अहंकार, महत्त्वाकांक्षा और स्वार्थ वृत्ति से है, और उसके बाद विचारों को रोक देना।

विचार न आने का अर्थ यह नहीं कि मन विचार-शून्य हो जाए। अगर हमारा मन विचार शून्य हो जाए, भावना और बुद्धि से रहित हो जाए तो मन का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। फिर तो प्रत्याहार से सीधे मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी, लेकिन ऐसा होता नहीं है। विचारों को रोकने का अर्थ होता है मूल कारण की शुरुआत जिस भावना के साथ हो रही है, उस भावना को पकड़ लेना, जान लेना, समझ लेना। अगर मूल विचार की शुरुआत अहंकार के कारण हो रही है, तो अहंकार का निर्मूलन कर उस कमी को दूर करना। अगर किसी दूसरे व्यक्ति के कारण यह भावना जाग्रत हो रही है, तो उस कमी को पहचानना। उस कमी को ध्यान में रखना कि यह मेरी स्वार्थ वृत्ति में है। मेरे अहंकार और मेरी महत्त्वाकांक्षा में यह कमी है, और फिर मार्ग खोजने का प्रयत्न करना, जिसके द्वारा उस कमी को दूर किया जा सके। इसके बाद वृत्तियों को रोका जाता है।

योग सूत्रों में कहा गया है कि वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। वृत्तियों का सम्बन्ध विचारों के साथ रहता है, क्योंकि

बहुत-से विचार प्रमाण पर आधारित होते हैं, बहुत-से विपर्यय या विकल्प या निद्रा या स्मृति पर आधारित होते हैं। इस प्रकार वृत्तियों के साथ विचारों के सम्बन्ध को देखा जाता है और मन की एक अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर अन्त:करण की स्थिर और एकाग्र अवस्था में पहुँचा जाता है, जिसको कहते हैं धारणा। इस प्रक्रिया में जैसे-जैसे हम इन्द्रियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, इन्द्रिय ज्ञान के प्रति पूर्ण सजग बनते हैं, मनस् तत्त्व के भीतर उत्पन्न क्रिया-कलापों के प्रति सजग बनते हैं, वैसे-वैसे चेतन, अवचेतन और अचेतन पर इनका दबाव समाप्त होता जाता है, और इनसे तनाव उत्पन्न नहीं होता। जिस प्रकार बिना किसी अवरोध के पानी की धार बहती है, उसी प्रकार मन की शक्ति अबाध रूप से एक केन्द्र की ओर बहने लगती है।

अत: विचारों को रोकने का अर्थ हो गया स्तम्भन शक्ति, विचारों को बाँधने की शक्ति। बाह्य विषयों की ओर विचारों का जो प्रवाह है, उसे बाँध देना, रोक देना और उसकी दिशा उलट देना। जब यह धारा अपनी दिशा को बदलती है, तब वह प्रत्याहार की, अन्तर्मुखता की अवस्था कहलाती है।

उपर्युक्त कार्य कठिन अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु जब प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती है, तब मन स्वत: नियन्त्रण में आ जाता है। इच्छाएँ ही दु:ख का कारण हैं। जब वही वश में रहेंगी, तब दु:ख कैसा? इस प्रकार प्रत्याहार दु:ख के कारण का समूल नाश करता है। तत्पश्चात् मन को उच्च साधना में लगाया जा सकता है।

–'घेरण्ड संहिता' से उद्धृत

मन का नाश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मनोनाश का तात्पर्य अपना नाश नहीं है। वेदान्तियों के अनुसार मन दो प्रकार का होता है—उच्च और निम्न। इनमें से निकृष्ट मन का ही नाश करने को कहा गया है, जो वासनाएँ उत्पन्न करता है। मन के सरोवर में जो लहर उठती है, उसे वासना कहा गया है। वासना का अधिष्ठान कारण-शरीर है। वहाँ यह बीज-रूप में रहती है और अवसर मिलने पर मन-सरोवर में प्रकट होती है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा रहता है, वैसे ही अन्त:करण में वासनाएँ अन्तर्निहित रहती हैं। नयी-नयी वासनाएँ एक-एक करके उत्पन्न होती हैं, मन की सतह पर आती हैं, जीवों के मन में संकल्प उत्पन्न करके उन्हें भोग पदार्थों को प्राप्त करने और भोगने के लिए प्रेरित करती हैं।

अहंकार, राग-द्वेष और सम्पूर्ण संकल्पों एवं वासनाओं को क्षय कर देना ही मनोनाश है। वासनाओं के नाश से मनोनाश होता है। मनोनाश का अभिप्राय यह नहीं है कि आप तलवार लेकर मन के टुकड़े-टुकड़े कर डालें।

अच्छा-बुरा, सुरूप-कुरूप, यह सब मन की कल्पना मात्र है। यदि मन बना सकता है, तो बिगाड़ भी सकता है। मनुष्य का मन एक समय में एक ही पदार्थ को ग्रहण कर सकता है, यद्यपि यह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर अद्‌भुत वेग से जा सकता है। मन एक द्वारपाल है, जो एक समय में एक ही प्रकार का इन्द्रिय ज्ञान मानसिक कार्यशाला में आने देता है। आप एक ही साथ देख और सुन नहीं सकते। मन एक समय में एक ही विचार कर सकता है, परन्तु मन की गति चपला-सी इतनी तीव्र होती है कि साधारण मनुष्य समझता है कि वह एक ही समय में अनेक विचार रख सकता है।

मनोनाश का अर्थ है मन के इस वर्तमान भावुक तथा कामुक स्वरूप को मार देना, जो अभेद होते हुए भी भेद देखता है और जो शरीर तथा आत्मा को अभिन्न मानता है। यथार्थ में इसके नाश का अर्थ है—इसका समष्टि चेतना में रूपान्तरण तथा परिणामस्वरूप समष्टि चेतना का उदय।

अज्ञान और अविवेक के कारण मन अपने मिथ्या व्यक्तित्व को सत्य जानता है तथा अपने को सारे कर्मों का कर्ता मान लेता है और इस प्रकार अहंकारी बन जाता है। मन अहंकार का दूसरा नाम है। मन का बीज अहंकार है। मन के विचारों से अहंकार की वृद्धि होती है। वह कल्पना करता है, 'मैं बन्धन में हूँ।' वह अपने को जीवात्मा से अभिन्न मानता है और स्वयं जीवात्मा बन जाता है तथा अच्छे-बुरे कर्म करने और उनका फल भोगने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। मन ही कर्मों का कर्ता है, अत: कर्मों का दायित्व उस पर ही रहता है।

मन आत्मा को चुराने वाला है। यह चोर है। मन जीवात्मा को विषयों में घसीटता है। जीवात्मा आभास-चैतन्य है। मन और जीवात्मा सदा साथ-साथ रहते हैं। एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। आत्मा को चुराने वाले मन को विचार, मनन और ब्रह्म पर निदिध्यासन द्वारा मार दें।

मन अविद्या की रचना है। यह अविद्या का कार्य है। यह भ्रम से पूर्ण है। इसलिए यह आपको लुभाता और धोखा देता है। यह आपको पथ-भ्रष्ट कर देता है। यदि आप आत्म-ज्ञान के द्वारा मन के कारण-रूप अज्ञान को नष्ट कर सकें तो मन का अस्तित्व कहीं नहीं रह जाता। यह शून्य में विलीन हो जाता है। जब ज्ञान का उदय होता है तो मनोनाश स्वयमेव हो जाता है।

समस्त जीवन, जिसका अस्तित्व वास्तव में है ही नहीं, अपने जन्म-मरण-रूप सहकारी आभासों सहित मन की विषयनिष्ठा की प्रवृत्ति का परिणाम है, और कुछ नहीं है। मन का नाश होने पर सब-कुछ नष्ट हो जाता है।

एक पल में समग्र संसार को बनाने या मिटा देने की शक्ति मन में है, इसलिए इस आत्महन्ता मन का नाश वासनाओं का क्षय करके या प्राणायाम से या ब्रह्म-विचार तथा महावाक्य-चिन्तन से करें। सबको दु:ख में डालने वाली इस माया के संकट को दूर करने का सबसे उत्तम उपाय मन का नाश कर देना है। मनोनाश के साथ-साथ भूत, वर्तमान और भविष्य भी शून्य में विलीन हो जाते हैं और आत्म-

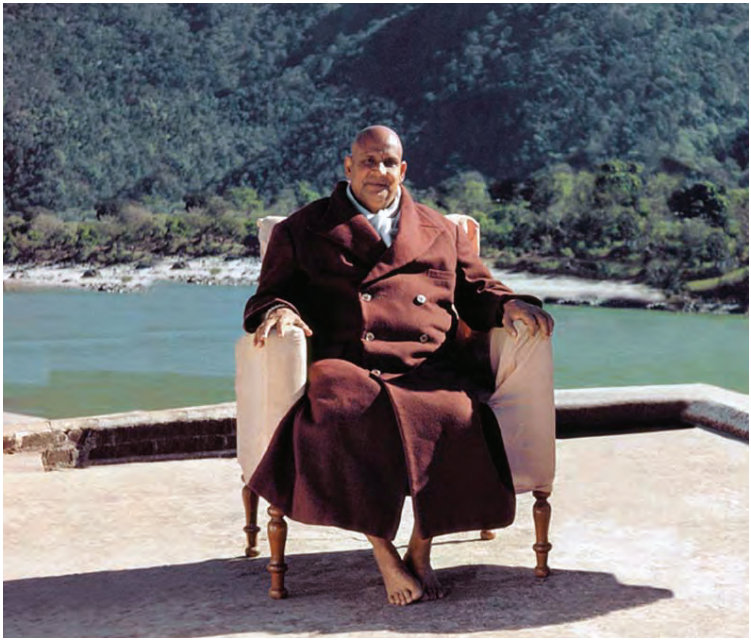

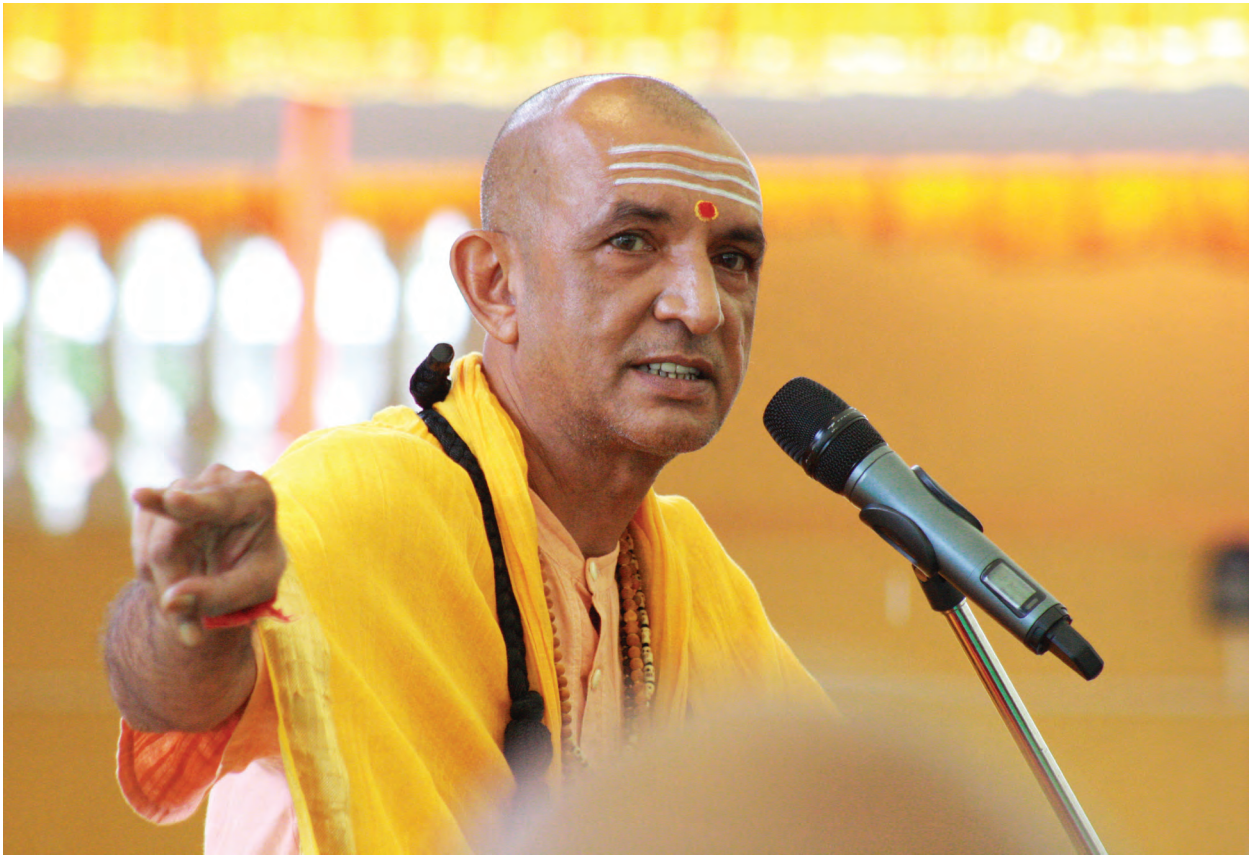

तत्त्व का उदय प्रारम्भ हो जाता है। यदि आप आत्मा पर निरन्तर और गम्भीर ध्यान (आत्म-विज्ञान) के द्वारा मन का अतिक्रमण कर सकें तो आप निर्द्वन्द्व दशा को प्राप्त कर लेंगे। जैसे जंग लगी हुई ताँबें की थाली को मिट्टी, राख, खटाई चूर्ण आदि से चमकाया जाता है, वैसे ही जप, प्राणायाम, सत्संग, विचार और निदिध्यासन द्वारा मन का भी मार्जन करने की आवश्यकता है।

'अमन' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है, 'मन से रहित।' अमनस्कता वह अवस्था है, जिसमें मन नहीं रहता। यह अवस्था जीवन्मुक्तों में पायी जाती है। जन्म-मृत्यु के दु:खों से रहित सन्त को जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्तावस्था में नैसर्गिक प्रवृत्तिपरक मन नष्ट हो जाता है, परन्तु सात्त्विक मन नष्ट नहीं होता। जीवन्मुक्तावस्था में यह जगत् वैसा नष्ट नहीं होता जैसा माना जाता है। इसका अर्थ तो केवल यही है कि व्यावहारिक जगत् की सत्ता का रूप और रंग परम तत्त्व में रूपान्तरित हो जाता है।

मनोनाश के पाँच उपाय हैं। पहला, जब कोई विचार पैदा हो तो उसे भगा दें। अपने मन से कहें, 'नेति-नेति'। दूसरा, प्रतिपक्ष भावना। जो विचार मन में उठे, उसके प्रतिकूल विचार उपस्थित करें, जैसे घृणा के प्रतिपक्ष में प्रेम, भय के प्रतिपक्ष में साहस आदि। तीसरा, ब्रह्म-भावना बनाये रखें। सारे संकल्प स्वयं मर जायेंगे। चौथा, आप केवल मन को साक्षी-रूप से देखें। उदासीन बने रहें। पाँचवाँ, सदा इस बात की जिज्ञासा करते रहें कि 'मैं कौन हूँ?' सारे विचार मर जायेंगे।

विचारशील व्यक्ति का मन क्षीण होकर शून्य बन जाता है। यह नेति-नेति या प्रतिपक्ष की भावना से सुगमतर उपाय है। महर्षि पतंजलि के अनुसार प्राणायाम के द्वारा या चित्तवृत्ति-निरोध के द्वारा मनोनाश किया जा सकता है। परन्तु केवल प्राणायाम से मनोनाश नहीं हो सकता, कुछ समय के लिए वृत्तियाँ शान्त अवश्य हो जाती हैं।

चित्त में परमात्मा का निरन्तर और शुद्ध विचार करने से मन हृदय में लय हो जाता है। यही वह परम गति है, जिसकी कामना ऋषि-मुनि करते हैं। मन का लय हो जाना परमानन्द या मोक्ष है। वैराग्य मनोनाश की अन्य विधि है। यह वैषयिक जीवन के दोषों से अवगत होने पर सांसारिक भोग-पदार्थों के प्रति अरुचि है। जप, कीर्तन, प्रार्थना, भक्ति, गुरु की सेवा तथा स्वाध्याय भी मनोनाश के प्रभावी साधन हैं।

मन का पूर्ण समर्पण हो जाने पर चेतना के स्फुरण ही मन से जागने लगते हैं। बुद्धि इसमें बाधक है, भावना इसमें साधक है। मन के सर्वस्व लय होते ही सहज कार्य होते हैं। मन के बाद विज्ञान का लय होता है, फिर आत्मा का।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यम् वाणी

पश्चिम की प्रगति का मुख्य आधार है अस्त्र-शस्त्र और टेक्नॉलॉजी। वे लोग अपनी टेक्नॉलॉजी को विकसित करते रहते हैं, अपना सामान बेचते जाते हैं और यहाँ के लोग लेते जाते हैं। यह जो मच्छरदानी देख रहे हो, वहीं बनती है। केवल सूता डाला जाता है, मशीन से अपने आप बनती जाती है। पहले के जमाने में मच्छरदानी को आदमी बनाता था। एक आदमी एक महीने में एक मच्छरदानी बनाता था। सवाल देर से बनाने या जल्दी बनाने का नहीं, आदमी को काम देने का है। एक मशीन आज जो काम करती है, वह पहले सौ आदमी करते थे। मतलब एक मशीन लगा देने से निन्यानवे का काम खत्म।

हमारे देश में बेरोजगारी बढ़ने का एक कारण यह भी है। पहले आदमी अपने हाथ से सूता बनाते थे, सूता कातते थे, उसके पहले कपास को साफ करना, फिर कपास को धोना, फिर उसको सुखाना, फिर उसका सूता बनाना, फिर उसको घुमाकर रखना, फिर उसके बाद उसको चरखे में डालना, उसके बाद उसका कपड़ा बनाना—इसमें सैकड़ों आदमी लगे रहते थे। इनको कोरी कहते हैं, कोरी जाति के लोग। यह पूरे हिन्दुस्तान में घर-घर का उद्योग था। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान आए तो उन लोगों ने अपने मैन्चेस्टर जैसे नगरों में कपड़े के उद्योग शुरू किए। वे लोग यहाँ से सूती कपड़ा मँगाते थे और फिर वहाँ से तैयार कपड़े भेजते थे। उस समय हिन्दुस्तान में बहुत बड़ा अकाल पड़ा था। बिहार, बंगाल और उड़ीसा में लाखों लोग मरे। यह बहुत बड़ी विपदा इसलिए हुई कि अंग्रेजों ने सूती कपड़ा निर्यात करना प्रारम्भ किया और तैयार कपड़ा यहाँ लाने लगे। इसे वही लोग खरीद सकते थे जिनमें खरीदने की क्षमता थी। जुलाहे के लिये कोई कार्य नहीं था। इस कारण सारा देश अकाल में जा रहा था।

कताई, बुनाई यह काम हर परिवार किया करता था और यही गांधीजी की दृष्टि ने पकड़ा। उन्होंने घर-घर में चरखा शुरू किया। यह उनकी सफलता का एक बड़ा कारण था। न सिर्फ हिन्दुस्तान में, तुम तिब्बत जाओ, कश्मीर जाओ, तुम्हें चरवाहे मिलेंगे जो अपने मवेशियों को पालते हैं और फिर ऊन कातते हैं। दिन और रात, आदमी, औरत और बच्चे, सब कातते हैं। मैंने वे दिन देखे हैं। वे चरखा चलाते हैं, स्वेटर बनाते हैं, लोई बनाते हैं, कपड़े बनाते हैं। उत्तर भारत में वे ऊन की चीजें बनाते हैं, पश्चिम भारत में सूती चीजें और दक्षिण भारत में रेशमी चीजें। इससे हिन्दुस्तान में हर व्यक्ति को कुछ रोजगार मिलता था, कुछ खाने को मिलता था।

कपड़ा बनाने की मशीनें आने के बाद हिन्दुस्तान में बेरोजगारी आई, हर व्यक्ति का काम मशीनों ने छीन लिया। गांधीजी इसके खिलाफ थे। गांधीजी कभी

नहीं चाहते थे जो आज हिन्दुस्तान में हो रहा है। गांधीजी कहते थे कि मशीनों का होना, टेक्नॉलॉजी का होना अच्छा है, परंतु लोग ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। इन मशीनों को रखने का क्या फायदा जब हजारों लोग भूखे हैं? कम-से-कम उन्हें कुछ तो मिले। वे बड़े उद्योगों के पक्ष में नहीं थे। उनका विश्वास घरेलू उद्योग में था। साम्यवाद ऐसे ही मजदूरों और कामगारों के हक के लिए लड़ाई लड़ रहा था, लेकिन वह हार गया। पहले रूस में, अब चीन में भी। भारत में तो साम्यवाद की कोई शक्ति ही नहीं रही।

पश्चिम में भी गरीब लोगों की संख्या काफी है, भारत की तरह, लेकिन वे उन्हें हर सप्ताह बेरोजगारी भत्ता दे देते हैं। पश्चिम के लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। वे युद्ध का सृजन करते हैं, हथियार बेचते हैं और पैसे कमाते हैं। उन्होंने इराक को खूब आधुनिक हथियार बेचे, अब वे चाहते हैं कि उसके पास जो है उसे खत्म करो ताकि वह फिर खरीदे। उनकी राजनीति समझना बहुत कठिन है। वे हर देश को हथियार-बारूद बहुत बेचते हैं और जब तुम नहीं खरीदो तो वे तुमसे नाराज होते हैं। उन्हें भारत पसन्द नहीं क्योंकि हम उनसे खरीदते नहीं हैं। श्रीलंका खरीदती है, पाकिस्तान खरीदता है, भारत नहीं। पाकिस्तान को एफ-16 जैसे लड़ाकू विमान अमेरिका ने एडवान्स के रूप में कई साल पहले ही दे दिए थे। फिर अमेरिकन सेनेट ने संशोधन किए जिससे वे नहीं बेच पाए। अब अमेरिका को

पैसे लौटाने होंगे, लेकिन वह ऐसा करेगा नहीं। बात यह है कि ये सारी कपनियाँ जो हथियार बनाकर हमें और तुम्हें बेचती हैं, ये बैंक से पैसा उधार लेकर हथियार बनाती हैं। अगर ये हथियार नहीं बेच पाते तो बैंक का कर्ज चुकाएँगे कैसे? फिर बैंक डूब जाएगा और सरकार को बीच में आना पड़ेगा।

इराक पर अभी व्यापार प्रतिबन्ध हैं। इराक का कोई सामान बाहर नहीं जा सकता। इराक को यहाँ से कुछ निर्यात भी नहीं कर सकते। अगर तुम चाहो कि चना, गेहूँ, कपड़ा, दवाई जैसा सामान जो एक सामान्य आदमी को चाहिये, उसे वहाँ के बाजार में भेजना, तो नहीं भेज सकते, उस पर प्रतिबन्ध है। इराक की हालत बहुत खराब है। लाखों मर गये हैं वहाँ भूख से। वहाँ पानी नहीं है, सामान नहीं है, कुछ नहीं है। कहाँ से आयेगा? वे जाने ही नहीं देते सामान। आयात-निर्यात की अनुमति ही नहीं है। कोई जहाज नहीं जाएगा, उसको पार ही नहीं करने देंगे। यह प्रतिबन्ध सन् 1993 से संयुक्त राष्ट्रसंघ ने लगाया है। अभी हाल में एक और प्रतिबन्ध लगा है। पहले लोगों के खाने-पीने का सामान अन्दर जा सकता था, अब वह भी कल से बन्द हो जाएगा।

स्वामीजी, एक तरफ ये मानव अधिकार की बातें करते हैं और दूसरी ओर ये प्रतिबन्ध, क्या यह ठीक है?

देखो जी, मानव अधिकार की जो बातें होती हैं, वे कमजोर लोगों के लिए होती हैं। मानव अधिकार छोटे आदमी को तंग करने के लिए बड़े आदमी के हाथ में एक शस्त्र है। तुम्हारे और तुम्हारी बीवी के बीच रोज झगड़ा होता है, मगर तुम अपने नौकर से कहते हो कि तुम अपनी बीबी को क्यों मारते हो! वह यह नहीं कह सकता कि तुम अपनी बीवी को क्यों मारते हो। मानव अधिकारों की जो बातें होती हैं वे बड़े आदमियों के नखरे हैं, छोटे लोगों को तंग करने के बहाने हैं।

मानव अधिकार पश्चिम में नहीं टूटते हैं क्या? आखिर मानव अधिकार की परिभाषा क्या है? तुम मानवाधिकार को कैसे परिभाषित करोगे? मनुष्य के क्या अधिकार हैं? कुछ भी बक देना, कहीं भी चले जाना? मानव अधिकार की भी कोई परिभाषा होनी चाहिए, कोई सीमा होनी चाहिए। वह सीमा क्या है? हर देश का समाज उसकी सीमा है। वह समाज उसकी मर्यादा को निश्चित करता है। हमारे यहाँ लोगों के लिये निश्चित है कि लड़का बाप को जवाब नहीं दे सकता। उसे माता-पिता के पैर छूने पड़ेंगे, बाप से हाथ नहीं मिला सकता। यह हमारे समाज की आज तक की परिभाषा है। अब जब तुम बेटे के अधिकारों की बात करते हो तो इस परिभाषा पर आधारित करना होगा।

यूरोप-अमेरिका में लड़कों को तो छोड़ो, लड़कियों को भी कोई रोक-टोक नहीं है। रात हो या दिन, उनकी लड़कियों को ऐसी रोक-टोक नहीं होती जैसी यहाँ

होती है। उनका समाज ही वैसा है, जबकि हमारे समाज में कहा जाता है कि लड़की को शाम के बाद घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। हमारे समाज ने यह व्याख्या की है, परिस्थितियों को देखते हुए। अब वह लड़की पूछे कि मेरा अधिकार? हाँ, तुम्हारा अधिकार है, मगर वह अधिकार समाज के अनुसार होता है। समाज ही तुम्हारे अधिकारों को परिभाषित करता है। समाज की परिस्थिति तुम्हारे अधिकारों को परिभाषित करती है। वहाँ औरत और मर्द में बात नहीं बनती तो दोनों अलग हो जाते हैं, कोई समस्या नहीं है। यहाँ तो मुश्किल हो जाएगा, औरत तो भूखी मर जाएगी। मान लो मर्द औरत को तलाक दे दे और चला जाए, बम्बई-दिल्ली की बात नहीं कर रहा हूँ, आम हिन्दुस्तान की बात कर रहा हूँ, तो वह कहाँ जाएगी? पढ़ी-लिखी तो है नहीं, भूखी मरेगी या कोठे पर चली जायेगी। अब कहो कि पति को तलाक देने का अधिकार है, यह मानव अधिकार है, मगर समाज अभी इसके लिये तैयार है क्या?

इस समय मानव समाज दो गुटों में बँटा है, यूरोपीय समाज और एशियाई समाज। एशियाई समाज एक ढंग से चलता है और यूरोप का समाज दूसरे ढंग से। उसी आधार पर मानव अधिकार की बातें कही जाती हैं। उनके यहाँ भी मानव अधिकारों का खण्डन होता है। अमेरिका में काले लोगों के ऊपर कितना अन्याय होता है? इंग्लैंड जाओ, जहाँ काले लोग रहते हैं, उस बस्ती में जाओ और जहाँ गोरे लोग रहते हैं, उनकी बस्ती में देखो, अंतर साफ मालूम पड़ेगा।

अभी इस समय दुनिया में अमेरिका को कोई पसंद नहीं करता। अमेरिका सब देशों को पैसा देता है, इज़राइल को अरबों डॉलर के अस्त्र-शस्त्र प्रदान करता है, मगर वही देश उसको गाली देते हैं। पाकिस्तान की उसने कितनी मदद की, अब पाकिस्तान उसी को मारता है। इतिहास में भी यही हुआ। जब मिस्र बहुत बड़ा साम्राज्य था, सारी दुनिया में उसकी सेना फैली हुई थी, उसने क्या किया? यहूदी लोगों को, अफ्रीकी लोगों को पकड़-पकड़ कर अपने देश का गुलाम बनाया, सब काम करवाया और खुद मौज में रहे। अंत में उसका पतन हो गया, खत्म हो गया। रोम कितना बड़ा साम्राज्य था, पर वह भी खत्म हो गया। यूनान का साम्राज्य सारी दुनिया जानती है, वह खत्म हो गया। यूनान का साम्राज्य तक्षशिला चला आया, झेलम पार कर लिया, पाटलीपुत्र तक पहुँच गया था। पाटलीपुत्र में लड़ाई हुई थी चन्द्रगुप्त से। इतनी दूर तक ये लोग पहुँच गये थे, पर फिर सब सिमट गये।

पहले के लोग बहुत भिन्न रहे होंगे, दुनिया बिल्कुल भिन्न रही होगी?

पहले के लोग केवल लड़ाई जानते थे, लड़ाई के बल पर जीवित रहते थे। लड़ाई उनका व्यवसाय था। चीन और हिन्दुस्तान कृषि प्रधान देश हैं, अफ्रीका कृषि और वन प्रधान देश है, पर उत्तर के जितने देश हैं, वे कृषि प्रधान देश नहीं हैं। वहाँ

कृषि होती है, मगर वे कृषि प्रधान नहीं हैं। अमेरिका का जो दक्षिणी हिस्सा है, वह भी कृषि प्रधान देश है। उस समय वहाँ चिब्चा, इन्का, माया जैसी अलग-अलग जातियाँ रहती थीं, जिनको स्पैनिश लोगों ने मारा-पीटा।

लगता है उस समय लोगों के मनोरंजन का कोई साधन नहीं था। अभी क्लब, पर्यटन जैसी कितनी सारी चीजें हैं।

ऐसी बात नहीं है। ये जो क्लब की प्रथा है, नाचने-गाने, खाने-पीने और जुआ खेलने की आदत आदिकाल से है। यहाँ की जो जनजातियाँ हैं, जैसे संथाली, या मध्यप्रदेश में कोल और भील, इनमें भी यह सब होता है। हमने देखा है, हर गाँव में एक जगह होती है जिसके हर जगह अलग-अलग नाम हैं। मध्यप्रदेश में उसे घुटुल कहते हैं। वह गाँव का एक तरह का क्लब होता है, जहाँ लड़का-लड़की जाते हैं, नाच-गाना, शराब पीना, जुआ खेलना होता है। यह आदिकाल से चला आ रहा है।

फिर भी यहाँ कितने प्रकार के खेलकूद हैं, कितने प्रकार के मनोरंजन हैं?

नहीं, खेलकूद और मनोरंजन आदिकाल से चले आ रहे हैं, ये आज की चीजें नहीं हैं। संस्कृत में इसे केलि कहते हैं। केलि का मतलब खेल– *केलि क्रीडा कौतुकम्*। कौतुक माने तमाशा। इसी तरह द्यूत माने जुआ। द्यूत क्रीडा तो आज का शब्द नहीं

है, बहुत पुराना है। तुलसी रामायण में चौगान शब्द लिखा है, उसका मतलब होता है हॉकी। उस वक्त भी हॉकी खेली जाती थी।

लेकिन स्वामीजी, जुआ जितना चीन में है उतना संसार में कहीं नहीं है।

नहीं, जुआ दुनिया में सब जगह है। हमारे हिन्दुस्तान में तो दीवाली के दिन जो आदमी जुआ नहीं खेलता था वह दीवाली मना ही नहीं सकता था। दीवाली तो जुए का त्यौहार था। घर में औरतें जुआ खेलती थीं भई, हमें मालूम है, बचपन में देखा है। दीवाली मनाने का तरीका है–दिया जलाना, जुआ खेलना, मिठाई खाना, कपड़े पहनना, पटाखे फोड़ना।

गीता के विभूतियोग अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं कि दुनिया की सभी चीजों और कलाओं में जो उच्च हैं, वह मैं ही हूँ। एक जगह वे कहते हैं– *द्यूतं छलयतामस्मि।* छलकपट करने वालों में मैं जुआ हूँ। मतलब जब गीता लिखी गई तब भी जुआ था। जैसे आजकल तुम किसी के घर जाकर भोजन का निमन्त्रण देते हो कि भई आज हमारे घर में आओ, दावत खाओ, वैसे ही प्राचीन काल में जुए के लिये निमन्त्रण देते थे। नल तो अपना पूरा राज्य जुए में हार गये। दमयन्ती और राजकुमार को छोड़कर चले गये। युधिष्ठिर तो धर्मराज थे, मतलब बहुत भले आदमी थे। मगर उस जमाने में उच्च चरित्र वाला आदमी भी जुआ खेल सकता था। उस वक्त जुआ बुरा नहीं माना जाता था। उस वक्त कोई नहीं कहता था, अरे धर्मराज! तुम जुआ खेलते हो। हाँ, जरूर खेलेंगे, यह तो हम लोगों का रिवाज है। जुआ उस वक्त एक स्वीकृत, सम्मानित क्रिया थी और उसका फायदा दुर्योधन ने छल करके उठाया।

स्वामीजी, चीनी लोग तो रात-रात भर जुआ खेलते हैं। बड़ी-बड़ी दुकानें होती हैं, पीछे कमरे रहते हैं जहाँ जुआ खेलते रहते हैं, जिसके कारण कभी-कभी रातों-रात दिवालिया हो जाते हैं, दुकानें बन्द हो जाती हैं।

यहाँ देवघर में कहीं पर भी जाओ, दुकान में बैठकर चार आदमी ताश खेलते मिलेंगे। कोई ग्राहक आया तो उसे सामान देकर फिर बैठ जाते हैं ताश खेलने। यह सब चलता है क्योंकि मनुष्य को अपने को भुलाने के लिये कुछ साधन चाहिये, जिसे मनोरंजन कहते हैं। मन को भुलाना पड़ता है, किसी चीज में लगाना पड़ता है। मन को किसी भी काम में व्यस्त रखने को ही मनोरंजन कहते हैं। मन को हमेशा काम में लगाकर रखो, कुछ नहीं तो ताश ही सही। नहीं तो आदमी सारा दिन दुकान में बैठकर क्या करेगा? रामायण पढ़ेगा? रामायण तो मनोरंजन नहीं होता।

दुनिया का कभी विश्लेषण करो तो सोचने में बहुत मजा आता है। नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क और फिन्लैंड जैसे देशों में लोग क्या करते हैं, मालूम है? वहाँ

हर घर में 'सॉना' होता है। घर के पीछे एक-के-ऊपर-एक बड़े-बड़े पत्थर रख देते हैं और नीचे आग लगा देते हैं। पत्थर गर्म होता है और ऊपर लकड़ी का कमरा बनाते हैं। कमरा इतना गर्म हो जाता है कि अंदर शरीर से पसीना छूटने लगता है और बाहर बर्फ होती है। अब तो यह गर्मी लकड़ी से नहीं, बिजली से पैदा होती है। यह प्रसिद्ध हुआ नॉर्वे और स्वीडन जैसे देशों में। लोग कपड़े उतारकर जाते हैं, एक पेड़ की शाखा होती है जिसे लेकर एक-दूसरे के शरीर पर मारते हैं, उससे बदन खुलता है। पसीना एकदम पानी की धार की तरह निकलता है। उसके बाद सब बाहर निकलते हैं, बर्फ में नहाते हैं। बाहर का तापमान बेहद कम होता है, पर बर्फ में जाकर नहाते हैं और खूब कूदते हैं। जब शरीर बिल्कुल ठण्ढा हो जाए, एकदम बन्दर के मुँह की तरह लाल हो जाए, तब फिर वे वापस आते हैं सॉना में। ऐसा दो-तीन बार करते हैं, उसके बाद कमरे में जाकर अपने को पोंछ कर, कपड़े बदल कर सो जाते हैं। सॉना से चमड़ी के छोटे-छोटे छिद्र खुलकर अन्दर की गंदगी को पसीने के साथ बाहर करते हैं।

अपना मनोरंजन करना, अपनी कामनाओं की पूर्ति करना, यह किस हद तक ठीक है?

भारतीय परंपरा में कहा गया है कि अगर तुम अपनी कामना को अभिव्यक्त करना चाहते हो और उस चाह को नियंत्रित नहीं करना चाहते तो कोई अंत ही नहीं है।

सड़क अंतहीन है, उसकी कोई सीमा नहीं है। कहीं-न-कहीं तो सीमा बांधनी होगी, रेखा बनानी होगी ताकि तुम्हारे कृत्य तुम्हारे लिए ही समस्या न खड़ी कर दें। समस्या तुम्हारे भाई-बहन, पत्नी, बेटी या माँ-बाप के लिए नहीं, तुम्हारे लिए ही होगी। तुम्हें सोचना होगा, दूसरों के लिए नहीं, केवल अपने लिए। अगर अपने आप को अभिव्यक्त करना है तो यह सोचना पड़ेगा कि मैं यह अभिव्यक्ति स्वयं को चोट पहुँचाए बिना, अपने आप को खोए बिना कैसे करूँ, और जब जानते हो कि तुम्हारा नुकसान होगा तो मत करो। जब कहाँ तक का सवाल आए तब सड़क तो अंतहीन है।

तुम्हें जब कोई गाड़ी दी जाती है तो कहा जाता है कि इस गाड़ी की अधिकतम गति इतनी है। मान लो वह गतिसीमा 200 मील प्रति घण्टा है। उससे ज्यादा उसका मोटर नहीं चल सकता। तुमने कहा, ठीक है हम 200 मील की गति से गाड़ी चलायेंगे क्योंकि गाड़ी की वह सीमा है। इसमें एक ही सवाल उठता है। गाड़ी की सीमा तुम्हें बता दी, मगर सड़क की स्थिति तो नहीं बतायी। क्या तुम उस सड़क पर 200 मील की गति से गाड़ी चला सकते हो? जब तुम्हें मालूम पड़ गया कि भई यहाँ सड़क ऊबड़-खाबड़ है, 200 मील नहीं चलेगा इस हालत में, तो कितना चलेगा? 45, 50 या 100। इसको कहते हैं संयम। जीवन में तुम्हारी अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ हो सकती हैं, पर अपने शरीर, मन, परिवार और समाज की परिस्थितियों को देखो। तब जाकर तुम अपने लिये सीमा बना सकते हो। अपनी सीमा आदमी खुद तय करता है। तभी तो जो व्यवहार हिन्दुस्तान में खराब माना जाता है, अमेरिका में उसे ठीक मानते हैं, और जो व्यवहार वहाँ गलत माना जाता है उसे यहाँ ठीक मानते हैं।

ऋतं और सत्यं

हर समाज की अलग-अलग परिस्थिति होती है। समाज की परिस्थिति का निर्णय धर्म देता है, राज्य का कानून नहीं। भगवान ने दुनिया में दो प्रकार के कानून बनाये हैं। एक कानून तो उन्होंने प्रकृति का बनाया है और दूसरा बनाया मनुष्य का। मनुष्य के कानून को तुम कानून कहते हो और प्रकृति के कानून को धर्म। जो प्राकृतिक नियम हैं, उनका अध्ययन करके ऋषि-मुनियों ने कहा कि यह करना और वह नहीं करना, ऐसे खाना, ऐसे नहीं खाना, ऐसे सोना, ऐसे नहीं सोना, ऐसे शादी करना, ऐसे शादी नहीं करना, ऐसे अन्त्येष्टि करना, ऐसे अन्त्येष्टि नहीं करना। उन्होंने अपनी मर्जी से नहीं कहा, बल्कि प्रकृति का नियम बतलाया।

दूसरी ओर मनुष्य और समाज ने मिलकर नियम बनाए कि ऐसा करने से यह होगा, ऐसा करने से वह होगा, ऐसा करने से यह दण्ड होगा, वैसा करने से वह दण्ड होगा, ऐसा करने से जेल जायेगा, वैसा करने से फाँसी देंगे। ये तो नियम हैं जो मनुष्य ने बनाये जिसे तुम कानून कहते हो। इसे हम लोगों के यहाँ ऋतं और सत्यं कहते हैं। नियम, विधान और कानून ऋतं है। वह हर देश का अलग-अलग होता है। जो प्राकृतिक नियम है, उसे कहते हैं सत्यम्। ऋतं और सत्यं—सारी सृष्टि, सारे समाज का मार्गदर्शन इन दो कानूनों से होता है। मार्गदर्शन का मतलब क्या हुआ? तुम गाड़ी की चाबी घुमाते हो, गाड़ी चलती है। मगर गाड़ी को कौन-सी चीज नियंत्रित करती है? स्टीयरिंग गाड़ी को नियंत्रित नहीं करता, वह तो दिशा को नियंत्रित करता है। गाड़ी की गति को दो चीजें नियंत्रित करती हैं, एक्सीलेटर और ब्रेक।

उसी तरह से मानव जाति को नियंत्रित करने के लिये ऋतं और सत्यं–ये दो नियम बनाये गये हैं, क्योंकि मनुष्य मूलत: पशु है। पशु की जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं, वे आदमी पर भी लागू होती हैं। पशु के जीवन में चार मूल प्रवृत्तियाँ हैं–खाता है, सोता है, बच्चे पैदा करता है और डरते रहता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन–ये पशु के चार नियम हैं और ये मनुष्य में भी हैं। अब मनुष्य भले ही पशु है, किन्तु थोड़ा-सा समर्थ पशु है। पेड़ पर चढ़ जाता है, हाथ से चीजों को पकड़ लेता है, दनादन बोलकर दूसरों को समझा देता है, कुछ टेढ़-मेढ़ा भी सोच लेता है, छल जानता है, कपट जानता है, पाप जानता है, पुण्य जानता है, सत्य बोलता है, झूठ बोलता है, पीछे से मारना जानता है, माने सब चीजें जानता है क्योंकि उसके पास बुद्धि है। मनुष्य एक समर्थ पशु है क्योंकि उसके पास पशु के चार गुणों के साथ एक और गुण है। उस गुण को चाहे ज्ञान कहो या समझ या जानकारी। अब इतना समर्थ पशु अगर नियंत्रण से बाहर हो गया तो दुनिया में प्रलय मचा देगा। जैसे रावण ने मचाया, हिटलर ने मचाया, कइयों ने मचाया। इसलिये इस मनुष्य को नियंत्रित करने के लिये इसके ऊपर धर्म और कानून का अंकुश होना चाहिये, जिसे ऋषि-मुनियों ने ऋतं और सत्यं के रूप में समझाया।

धर्म वह है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन को स्वयं अनुशासित करता है। जब तुम्हें बाहर से नियंत्रित किया जाता है, जब समाज तुमको नियंत्रित करता है, तब वह कानून है और जब तुम अपने को नियंत्रित करते हो, तब वह धर्म है। क्या करना, क्या नहीं करना, यह धर्म और अधर्म की भाषा है। धर्म में पाप और पुण्य होता है। कानून में पाप और पुण्य नहीं होता, वहाँ अपराध कहते हैं। तुमने किसी को कुछ किया, यह कानूनी अपराध है, जबकि धर्म इसे पाप कहता है। प्रकृति की दृष्टि में जो गलत है वह पाप है, और मनुष्य की दृष्टि में जो गलत है उसे अपराध कहते हैं। ये सब चीजें हमारी किताबों में लिखी हैं, हम कोई नयी बात नहीं समझा रहे हैं।

हर देश का अपना-अपना समाज होता है। चीन में जिनके घर में लड़कियाँ होती हैं, वे लोग परेशान हो जाते हैं। वहाँ भी यही हाल है, लड़कियों की शादी में बहुत खर्च करना पड़ता है। यह पहले के जमाने की बात कह रहा हूँ। अब तो चीन में ऐसा कड़ा कानून है कि अगर दूसरा बच्चा हो जाए तो जेल की सजा हो जाती है। वहाँ की सरकार बहुत कठोर है। वे बोलते हैं, ज्यादा बच्चे पैदा मत करो और जो ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं उन्हें सीधे जेल भेज देते हैं। आखिर चीन की आबादी भी तो एक अरब से ज्यादा है न? लेकिन गोरी जाति में ऐसा नहीं है। वहाँ लड़का और लड़की, दोनों को एक समान मानते हैं। उनका एक-सा व्यवहार होता है, एक-सा खान-पान होता है, सब चीजें एक-सी होती हैं। सम्पत्ति के अधिकार भी बराबर होते हैं।

क्या कारण है कि सभी पश्चिमी देशों में एक या दो बच्चे ही होते हैं और पूर्व में जितने भी देश हैं, उनमें बहुत बच्चे होते हैं?

यह जो गोरी जाति है, इनके यहाँ सब पढ़े-लिखे होते हैं। वहाँ कोई अनपढ़ नहीं मिलेगा। बहुत अच्छी शिक्षा होती है। छोटी उम्र से लड़के-लड़कियों को एक ही साथ पढ़ाते हैं। लड़कियों का स्कूल अलग, लड़कों का स्कूल अलग, ऐसा नहीं होता। लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं, एक साथ खेलते हैं। छोटी उम्र से एक साथ रहते हैं। बड़े होने पर भी एक साथ रहते हैं। लड़के और लड़की के बीच जो भेद हमारे समाज में है, वह भेद इनके समाज में बिल्कुल नहीं है।

जो समाज इस तरह पढ़ा-लिखा होता है, अनुभव वाला होता है, वह अपनी जनसंख्या को नियंत्रित कर सकता है, निर्णय ले सकता है कि एक संतान हो या दो। अब ये गाँववाले निर्णय नहीं कर सकते, उन्हें प्रजनन के नियम मालूम नहीं हैं। रजस्वला होने के बाद ऋतु काल आता है, उस वक्त ही संतान हो सकती है, बाकी दिनों में संतान नहीं होती। अब यह कौन बतायेगा इनको? पढ़े-लिखे लोग इस चीज को जानते हैं कि सुरक्षित और असुरक्षित अवधि कौन-सी है। एक तो यह बात गाँववालों को मालूम नहीं, दूसरी चीज इनको तो बोलने में भी शर्म लगती है। इसके बारे में बात करना ही मुश्किल हो जाता है। तीसरी चीज डॉक्टर लोग गर्भनिरोधन के बारे में जो बतलाते हैं, वे बातें शिक्षित लोग जानते हैं, इसलिए उनके यहाँ ज्यादा बच्चे नहीं होते। यहाँ न तो पिता को मालूम है, न माता को, न दादा को, न दादी को।

इसका मतलब यह नहीं कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध हो ही नहीं, मगर उसका परिणाम गलत नहीं होना चाहिये। अब आठ-दस बच्चे हो गये, उन्हें खिला नहीं सकते हो, फिर भी उसी घर में बच्चे पर बच्चा पैदा होता जा रहा है। जब तुम अपने घर में बच्चों को खिला नहीं सकते तो पैदा क्यों करते हो? कहते हो, भगवान ने दिया। गलत बात है। बच्चे भगवान की नहीं, परिस्थितियों की देन हैं।

–13 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

स्वामी शिवानन्द जी की आध्यात्मिक शिक्षा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे परम गुरु स्वामी शिवानन्द जी एक वरिष्ठ चिकित्सक रहे हैं। जिस युग में वे चिकित्सक थे, उस युग में शायद बहुत ही कम लोग एफ.आर.सी.एस. के डिग्रीधारी थे। मलाया देश में उनकी प्रैक्टिस होती थी। लेकिन एक दिन वहाँ उनकी मुलाकात एक साधु से होती है। साधु उन्हें एक किताब देता है, जिसका नाम था 'ब्रह्म-विचार'। करीब सत्तर-अस्सी पन्नों की छोटी-सी किताब है। जब हमें इसे देखने का अवसर मिला, तब हमने पाया कि उसमें भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की मूल-धारणाओं को व्यक्त किया गया है।

इस किताब को पढ़कर स्वामी शिवानन्द जी के मन में एक विचित्र, सुखद परिवर्तन हुआ। वे अपने कर्म-क्षेत्र का त्याग कर वापिस भारत आ गए। चेन्नई में जहाज से उतरे, अपने एक मित्र को बुलाकर कहा, 'यह सामान घर में दे देना। मैं घर नहीं जा रहा हूँ, बल्कि गुरु की खोज में, परमात्मा की खोज में हिमालय जा रहा हूँ।' वे जहाज से उतरकर ट्रेन पर चढ़े और उत्तर भारत की ओर निकल पड़े। इलाहाबाद, बनारस, पण्ढरपुर जैसे अनेक तीर्थस्थानों में गए और अन्त में ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ पर भी अनेक सन्तों से मुलाकात हुई, लेकिन गुरु नहीं मिले।

एक दिन जब वे दोपहर में एक पेड़ की छाया में आराम कर रहे थे और चिन्तन कर रहे थे कि मुझे गुरु कहाँ मिलेंगे, तब उन्हें लगा जैसे उनकी बन्द आँखों के सामने कोई छाया आई हो। जब वे अपनी आँखों को खोलते हैं तो देखते हैं कि सामने एक संन्यासी खड़े हैं। संन्यासी पूछते हैं, 'तू इस पेड़ के नीचे क्यों बैठा है?' स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि मैं चिंतन कर रहा था कि मुझे मेरे गुरु कहाँ मिलेंगे। संन्यासी कहते हैं, 'मैं ही तेरा गुरु हूँ, तुझे अभी संन्यास की दीक्षा दूँगा।'

दस मिनट में उन्होंने सम्पूर्ण विधि-विधान से स्वामी शिवानन्द जी को संन्यास की दीक्षा दे दी। उन्होंने सिर्फ इतना बताया कि मेरा नाम स्वामी विश्वानन्द सरस्वती है और मैं तुम्हें स्वामी शिवानन्द सरस्वती के नाम से दीक्षा दे रहा हूँ। बस इतना कहकर वे चले गए। गुरु और चेले के बीच मात्र पन्द्रह-बीस मिनट की मुलाकात हुई। इस छोटी-सी मुलाकात में ही स्वामी शिवानन्द जी को उनके गुरुजी ने संन्यास की दीक्षा दी, जिससे उनके भीतर अध्यात्म की ज्योति प्रज्वलित हो गई।

जब लकड़ी सूखी रहती है तो जल्दी आग पकड़ती है, पर जब लकड़ी गीली रहती है तब आग चाहे कितनी ही तेज क्यों न हो, लकड़ी से मात्र धुँआ निकलता है। जो आदमी संसार में रहता है, मोह-माया में आसक्त है, बंधन में है, वह गीली लकड़ी के समान है। उसे कितना ही जलाते जाओ, धुँआ ही निकलता है। पर जिसने

अपने आपको सांसारिकता से अलग कर लिया है, वह सूखी लकड़ी के समान है। सूखी लकड़ी को एक माचिस की तीली भी जला सकती है। स्वामी शिवानन्द जी सूखी लकड़ी थे, क्योंकि उन्होंने सब छोड़ दिया था। वे एक ही चिंतन को लेकर आगे बढ़ रहे थे कि मैं किस प्रकार उच्च अनुभवों को प्राप्त करके दूसरों के उत्थान में अपना योगदान दे सकूँ। गुरु के साथ उनका जो पन्द्रह-बीस मिनट का सम्पर्क हुआ, वह पर्याप्त था। गुरु की ऊर्जा स्वामी शिवानन्द जी में अवतरित हो गई और स्वामी शिवानन्द जी संन्यास मार्ग पर चल पड़े।

आध्यात्मिक जीवन की बाधाएँ

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि पहले आध्यात्मिक जीवन की बाधाओं को जान लो और उनसे अपने आपको सम्भाल कर रखो। जब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शत्रु कौन है, तब तुम उससे बचकर रहोगे। अगर तुम्हें मालूम ही नहीं कि तुम्हारा शत्रु कौन है, तो उसके वार से कैसे बचोगे? हमारी आध्यात्मिक उन्नति में कौन-से शत्रु बाधा डालते हैं? स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि सबसे बड़ा शत्रु द्वैत-भाव है। यही माया का आधार भी है। फिर अहंकार है, अस्मिता है, मरने का भय है, घमण्ड, दर्प, अभिमान, राग-द्वेष, कामुकता, भावुकता, निष्क्रियता और दिमाग का मोटापन भी है।

शरीर मोटा होता है तो परेशानी होती है, चलने-फिरने में बहुत दिक्कत होती है। उसी प्रकार से अगर मन भी मोटा हो जाए, तो मन को हिलाने-डुलाने में बहुत दिक्कत होती है। मन पत्थर की तरह जड़वत् हो जाता है। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि द्वैत का एक परिणाम मन का मोटापा है, मतलब मन की ग्रहणशीलता समाप्त हो जाती है।

इन सभी बाधाओं के प्रति तुम सजग होकर चलो और साथ-ही एक सूची बना लो कि मैं किन चीजों से सावधान रहूँगा। वह सूची तुम्हारी आध्यात्मिक दैनन्दिनी होगी, जिसे तुम बार-बार देखोगे कि मैं इस दैनन्दिनी के अनुसार आध्यात्मिक बाधाओं के प्रति सजग हूँ या नहीं, इन परिस्थितियों को झेल पाता हूँ या नहीं।

इस प्रकार तुम आत्म-सजगता और आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से

गुजरोगे। जैसे-जैसे तुम अपने बारे में जानकारी हासिल करोगे, जैसे-जैसे तुम अपने व्यक्तित्व, स्वभाव, व्यवहार और आचरण को जान पाओगे, वैसे-वैसे कमजोरियों को बदलने का प्रयास करोगे। इसके साथ-साथ तुम दिव्य गुणों को अपने जीवन में धारण करोगे। तुम्हारा जीवन दिव्य होता जाएगा। स्वामी शिवानन्द जी ने इस प्रकार बहुत ही सरल तरीके से समझाया है कि जीवन की साधना किस प्रकार होनी चाहिए, जिससे हम आध्यात्मिकता, शुद्धता, पवित्रता और उच्च, दिव्य अनुभवों को अपने जीवन में स्थान दे सकें।

स्वामी शिवानन्द जी की यह राय रही है कि योगाभ्यास द्वारा मानसिक और शारीरिक दुर्बलता से तुम मुक्ति पा लो। प्रार्थना और ध्यान, श्रद्धा और भक्ति, आत्मविश्वास और संकल्प शक्ति को प्राप्त करके अपने आपको परमार्थ से जोड़ो। जब स्वामी शिवानन्द जी ने समाधि ली थी, तब उनके अन्तिम शब्द थे, 'ईश्वर ही इस जगत् में सत्य है।' इस अन्तिम वाक्य को बोलने के पश्चात् उन्होंने अपने प्राण छोड़े थे। इस सर्वोच्च अनुभूति को उन्होंने वाकई अपने जीवन में प्राप्त किया था।

भावशुद्धि

स्वामी शिवानन्द जी का कहना था कि जब भी मैं किसी स्त्री को देखता हूँ, तो उन्हें देवी का स्वरूप मानते हुए मन-ही-मन नमस्कार करता हूँ। मन में *ॐ दुर्गायै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः* और *ॐ लक्ष्म्यै नमः* के मंत्रों से अपने सामने खड़ी महिला का अभिवादन करता हूँ। उन्हें देवी का दर्जा देता हूँ और मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त होता है। जब मैं किसी पुरुष को सामने देखता हूँ, तब उसे देवता रूप में

अभिवादन करता हूँ। 'तुम नारायण हो, शिव हो,' मेरे मन में यह भाव आता है। *ॐ नमः शिवाय* या *ॐ नमो नारायणाय* कहकर उन्हें मन-ही-मन प्रणाम करता हूँ, और उनके आशीर्वाद को ग्रहण करता हूँ। ये स्वामी शिवानन्द जी के शब्द हैं। वे यह नहीं कहते कि मैं उनको आशीर्वाद देता हूँ, बल्कि वे कहते हैं कि मैं अभिवादन के पश्चात् उनके आशीर्वाद को ग्रहण करता हूँ!

स्वामी शिवानन्द जी ने इस सिद्धान्त को वास्तव में अपने जीवन में जीया है। उनके जीवन में अनेकों ऐसी घटनाएँ हुई हैं जो साबित करती हैं कि एक पवित्र, शुद्ध अवस्था को प्राप्त करने के बाद ईश्वर की शक्ति उस मनुष्य के साथ हमेशा छाया के रूप में रहती है।

एक उदाहरण देता हूँ। ऋषिकेश में आश्रम बनने के पहले स्वामी शिवानन्द जी गंगा के दूसरे पार एक कुटिया में निवास करते थे। उनके बगल में अन्य कुटियाएँ थीं, जहाँ पर दूसरे साधु-संन्यासी निवास करते थे, अपनी साधना, सत्संग, स्वाध्याय किया करते थे। शाम के समय जब दो-चार साधु चलते-फिरते एक-दूसरे से मिलते थे, तब थोड़ी बातचीत भी होती थी। एक बार नवरात्रि का समय आ रहा था। स्वामी शिवानन्द जी के पड़ोसी साधु ने घूमते-फिरते कह दिया कि मेरी इच्छा है कि इस बार मैं माँ की पूजा पूरे साज-शृंगार के साथ, रत्न-वस्त्र-आभूषण-फल-फूल-द्रव्यों के साथ करूँ। लेकिन क्या करूँ, फकीर हूँ और कोई चेला है नहीं। उसने विनोद में स्वामी शिवानन्द जी के सामने ऐसी बात छेड़ दी, और उन्होंने चुपचाप उसकी बात सुन ली।

कुछ दिन बीते, सब लोग बात भूल गए। एक दिन जब ये स्वामी बैठे हुए साधना कर रहे थे, तब किसी ने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने अपनी कुटिया का दरवाजा खोला तो देखा कि वहाँ पर तीन पंजाबी लड़कियाँ थाली लिए खड़ी हैं। साधु उन लड़कियों से पूछते हैं कि तुम कहाँ से आयी हो, यह सब क्या है? लड़कियाँ कहती हैं कि हमें स्वामी शिवानन्द जी ने भेजा है। आपने इच्छा व्यक्त की थी कि आप पूरी धूम-धाम से माँ की आराधना करना चाहते हैं, तो स्वामी शिवानन्द जी ने व्यवस्था करके यह सब सामान आपके लिए भेजा है। साधु ने सोचा कि हो सकता है स्वामी शिवानन्द जी ने अपने किसी सम्पन्न भक्त से कहा होगा और उसी ने सब सामान की व्यवस्था की होगी। उन्होंने सामान ले लिया।

जब वे शाम को स्वामी शिवानन्द जी से मिलते हैं, तो कहते हैं, 'महात्मन् धन्यवाद।' शिवानन्द जी ने पूछा, 'किस चीज का धन्यवाद?' उसने कहा, 'आपने जो सामान भेजा है, उसके लिए।' शिवानन्द जी ने कहा, 'नहीं, मैंने तो कोई सामान नहीं भेजा। मैं कहाँ से भेजूँगा?' 'लेकिन जो तीन पंजाबी लड़कियाँ आई थीं, उन्होंने आपका नाम लिया है।' साधु ने दूसरे अन्नक्षेत्रों और आश्रमों में पता लगाया, पर कहीं पर उन लड़कियों का पता नहीं चला।

अनेकों साल बाद स्वामी शिवानन्द जी की महासमाधि के पश्चात् जब यही साधु आश्रम में आये, तब उन्होंने वहाँ के संन्यासियों को यह घटना सुनायी। उन्होंने कहा, 'सच्चे भक्त और साधक तो वही थे। मैंने तो उनके सामने केवल अपनी इच्छा व्यक्त की थी, लेकिन जिसका भाव पवित्र है, मन पवित्र है, अगर वह कुछ सोचे तो भगवान स्वयं उसे पूरा करने के लिए उतावले हो जाते हैं। यह श्रद्धा और भक्ति की पराकाष्ठा है।'

जहाँ तपस्या और साधना आध्यात्मिकता को जाग्रत करने का पहला मार्ग है, वहीं श्रद्धा, भक्ति, प्रार्थना और आराधना दूसरा मार्ग है। दोनों मार्ग गृहस्थ पर भी लागू होते हैं और साधु पर भी। अन्तर केवल इतना है कि गृहस्थ की प्रार्थना सकाम और साधु की प्रार्थना निष्काम होती है। गृहस्थ अपने लिए प्रार्थना करता है जबकि साधु सबके लिए। साधु की प्रार्थना की शक्ति कई गुणा तीव्र हो जाती है। यह त्याग तथा निष्काम-मानसिकता का परिणाम है।

अध्यात्म के अठारह आधारभूत सद्गुण

स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि कुछ ऐसे गुण हैं जिन्हें जीवन में प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करना, क्योंकि ये तुम्हारे जीवन को अनुशासित, व्यवस्थित और सकारात्मक बनाएँगे। जब तक तुम अपने जीवन को अनुशासित नहीं करोगे, द्वैत-भाव से मुक्ति संभव नहीं। अनुशासनहीनता तुम्हें पुनः द्वैत में खींचकर ले आएगी, जबकि अनुशासन तुम्हें अपने मन पर संयम देगा।

अपने आपको अनुशासित, व्यवस्थित करने के लिए जिन नियमों का पालन करना आवश्यक है, उनमें पहला है मन में सौम्य-भाव को धारण किए रहना। मन को डाँवाडोल नहीं होना है, न इधर झुकना है, न उधर। चेहरे पर सुख-दुःख का चिह्न नहीं। रामचरितमानस में वर्णन आया है कि जब रामचंद्र जी को मालूम पड़ा कि उन्हें राज्य मिलने वाला है, तो वे मुस्कुराए। जब उन्हें मालूम पड़ा कि उन्हें वनवास मिला है, तब भी मुस्कुराए–'बिहसे रघुराई।' अगर हमें वह खबर मिले, तो क्या चेहरे पर मुस्कुराहट दिखलाई देगी? नहीं। जिसका मन और चित्त

स्थिर है, उसका स्वभाव सौम्य होता है। इसलिये अपने मन को स्थिर करके मन में सौम्य स्वभाव को अपनाओ, यह पहला अनुशासन है। इसी सौम्यता को श्रीकृष्ण ने गीता में मानसिक तप कहा है–

मन:प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥17.16॥

दूसरा अनुशासन नियमितता है। जो करते हो उसमें नियमितता होनी चाहिए, क्योंकि नियमितता से ही शरीर का, मन का, भावना का, आत्मा का पोषण होता है। आप निश्चित समय पर भोजन करते हैं या दिन-भर खाते रहते हैं? नाश्ते का, दिन के भोजन का, शाम के भोजन का एक समय होता है। उस समय पर भोजन करने से वह अच्छा पचता भी है, क्योंकि एक नियम, आदत, स्वभाव बना हुआ है। उसी प्रकार जब मन में कुछ नियम होते हैं, तब मन स्वास्थ्य, सुख और शान्ति को प्राप्त करता है।

सौम्य स्वभाव को धारण करना, नियमितता का पालन करना, अपने आपको दंभहीन, घमण्डहीन बनाने का प्रयास करना, निष्कपट होकर जीने का संकल्प लेना, सरल बनकर जीना, सत्य का आचरण करना, सम-भाव को धारण करना, एकाग्रता को प्राप्त करना, जीवन से चिड़चिड़ेपन को हटाना, व्यवहार-कुशल होना, विनम्र होना, दृढ़ निश्चयी होना, ईमानदार होना, शालीन होना, उदार होना, परोपकारी होना, दानी होना और पवित्र होना, स्वामी शिवानन्द जी ने इन 18 बिन्दुओं की चर्चा की है।

ये 18 बिन्दु, 18 चिंतन, 18 विचार मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित और अनुशासित करते हैं। इस व्यवस्था और अनुशासन से लोभ, कामुकता, मूर्खता, ढिठाई, अस्थिरता, भद्दापन, सनक, चिड़चिड़ापन, इन सबसे हम मुक्ति पाते हैं, तनाव से मुक्ति पाते हैं। ये यम-नियम सभी के लिए एक-समान लागू होते हैं, चाहे कोई गृहस्थ हो या संन्यासी। इनके द्वारा अपने चित्त के व्यवहार को ठीक रखना है।

हमलोगों की खोपड़ी में चार परतें हैं। पहली मन की, दूसरी बुद्धि की, तीसरी चित्त की और चौथी परत अहंकार की है। इन चार परतों की चंचलता ही चंचल चित्तवृत्तियों को जन्म देती है। इन वृत्तियों का निरोध करना शान्ति को प्राप्त करने का उपाय है। योग सूत्रों में कहा गया है, *योग: चित्तवृत्तिनिरोध:।* योग एक अनुशासन है, एक साधना है, एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम द्वैतपन के दुष्परिणाम से अपने आपको मुक्त कर पाएँगे और यही स्वामी शिवानन्द जी की आध्यात्मिक शिक्षा रही है।

–'अध्यात्म के अध्याय' से उद्धृत

एड्स पर योगनिद्रा के चिकित्सात्मक प्रभाव

ब्रजेश्वर मिश्रा, अधीक्षक, आयुर्वेद पंचकर्म अस्पताल, मौतीहारी, बिहार

एड्स एक बहुत ही जटिल और अनोखा संक्रामक रोग है। एड्स के लिए जिम्मेदार वायरस को एच.आई.वी. कहा जाता है। यह रेट्रोवायरस कहे जाने वाले वायरसों के समूह में आता है। यदि व्यक्ति इस रोग का शिकार होता है तो एंटी-रेट्रोवायरस दवाएँ उपलब्ध तो हैं, लेकिन वे सिर्फ वायरस को बढ़ने से रोकती हैं, उनसे एड्स का इलाज संभव नहीं है। साथ ही एंटी-रेट्रोवायरस दवाएँ बहुत महंगी हैं, उनके पार्श्व-प्रभाव अच्छे नहीं होते और उनका लंबे समय तक सेवन करने की आवश्यकता होती है। इसलिए एच.आई.वी. विश्व की सबसे गंभीर बीमारियों में से एक माना जाता है।

इस शोधपत्र में मेरा उद्देश्य योग निद्रा के अभ्यास से शरीर में प्राणिक ऊर्जा के संचार को जाँचना है, जिससे प्रतिरक्षण तंत्र मजबूत हो सकता है, CD_4 कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि हो सकती है (प्रतिरक्षण बढ़ाने वाली इन कोशिकाओं को T-cells भी कहा जाता है) और एच.आई.वी. की बीमारी को बढ़ने से रोका जा सकता है।

यहाँ मैं इससे संबंधित तीन पहलुओं को आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। पहला प्राणिक ऊर्जा से संबंध रखता है, दूसरा योग को एच.आई.वी. के संदर्भ में दर्शाता है और तीसरा रोग विषयक अध्ययन को पेश करता है।

हमारे शरीर में दो प्रकार की ऊर्जाएँ होती हैं, एक को प्राण शक्ति कहा जाता है और दूसरी चित्त शक्ति के नाम से जानी जाती है। मेरे विचार से योग निद्रा के दौरान ये दोनों प्रकार की ऊर्जाएँ निर्मुक्त होती हैं।

प्राणिक ऊर्जा

प्राण क्या है? आइये, हम आयुर्वेद और योग के अनुसार इसकी परिभाषा देखें। योग में प्राण को शक्ति का पर्याय माना गया है। श्री स्वामी सत्यानंद जी के अनुसार प्राण वह सार्वभौमिक ऊर्जा है जिसे समस्त सृष्टि चलायमान है। तर्क-संग्रह के अनुसार प्राण वायु है। यह वायु की तरह ही शरीर में प्रवाहित और प्रसारित होता है। चरक संहिता में कहा गया है–

सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राण: प्राणिनां स्मृत:। (1.17.118)

प्राणियों की सभी चेष्टाएँ वायु से होती हैं, इसी वायु को प्राण कहा जाता है। यही प्राण शरीर को जीवनी शक्ति प्रदान करता है। चरक संहिता में यह भी कहा गया है–

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्। (6.2.28.3)

अर्थात् वायु से ही आयु बढ़ती है, वायु ही बल का स्रोत है, वायु ही प्राणियों का आधार है।

मेरे गुरु, स्वामी निरंजनानंद जी 'प्राण और प्राणायाम' पुस्तक में कहते हैं कि प्राण एक है, लेकिन इसे हमारे शरीर की विभिन्न गतिविधियों और कार्यों के आधार पर पांच श्रेणियों में विभाजित किया गया है–प्राण, उदान, व्यान, समान और अपान। इसी प्रकार सांख्य दर्शन में कहा गया है कि अंत:करण एक है, लेकिन यह चार शक्तियों के रूप में कार्य करता है–चित्त, बुद्धि, मनस् और अहंकार–

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमान्तरं।

योग के परिप्रेक्ष्य में एच.आई.वी.

एच.आई.वी. रेट्रोवायरस है जो शरीर के T-cells (CD_4 cells) पर आक्रमण करता है। इसके कारण इड़ा नाड़ी यानि मानसिक शक्ति और पिंगला नाड़ी यानि प्राणिक शक्ति में अवरोध उत्पन्न होता है। इससे शरीर में प्राण और चित्त शक्ति

का प्रवाह गड़बड़ा जाता है। एच.आई.वी. वायरस बहुत जल्दी फैलता है, प्रतिदिन शरीर में लाखों-करोड़ों की संख्या में नए वायरस का संचार होता है। यह वायरस फिर प्रतिरक्षण तंत्र को नष्ट करना शुरू कर देता है। प्रतिरक्षण तंत्र को नष्ट करने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

- थाइमस ग्रंथि का निष्क्रिय होना
- टी-लिम्फोसाइट और बी-लिम्फोसाइट के कार्यस्तर में गिरावट
- इम्यूनोग्लोबिन (IgM IgG) उत्पादन के स्तर में कमी
- इन्टरलेनिसिन-2 (IL2) के उत्पादन में कमी

एच.आई.वी. में योगनिद्रा की भूमिका

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार यदि रक्त में CD_4 cells की संख्या 200/mm^3 से कम है तो यह एड्स का लक्षण माना जाता है। एड्स में CD_4 T-cells की संख्या शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता को मापने का महत्त्वपूर्ण पैमाना है।

योग निद्रा के अभ्यास में शरीर के विभिन्न अंगों के प्रति सजग बनने से वहाँ प्राणों का संचार होने लगता है जिससे प्रतिरक्षण क्षमता विकसित हो सकती है और CD_4 की संख्या बढ़ती है। इस तथ्य को सत्यापित करने के लिए मैंने एक चिकित्सकीय अध्ययन किया है।

अध्ययन का प्रारूप

मैंने अपने अध्ययन के लिए आयुर्वेदिक पंचकर्म अस्पताल, पूर्वी चम्पारण, मोतीहारी, बिहार से 30 एच.आई.वी. पॉज़िटिव मरीजों का चयन किया। इनमें 20 पुरुष और 10 महिलाएँ थीं जिनकी उम्र 18 से 50 वर्ष थी। इन्हें दो समूहों में विभाजित किया गया।

1. समूह क–20 एच.आई.वी. पॉज़िटिव मरीजों को शरीर के विभिन्न अंगों में सजगतापूर्वक प्राणों के संचार के साथ योग निद्रा करवाई गई। योग निद्रा का अभ्यास तीन माह तक प्रतिदिन 40 मिनट करवाया गया।

2. समूह ख–10 एच.आई.वी. पॉज़िटिव रोगियों को केवल पवनमुक्तासन भाग-1 का अभ्यास करवाया गया।

अध्ययन के परिणाम

अध्ययन के परिणामों ने दर्शाया कि समूह क में तीन माह तक योग निद्रा के अभ्यास के बाद CD_4 की संख्या में निश्चित वृद्धि हुई। समूह क में अध्ययन के आरंभ में CD_4 की संख्या 155/mm^3 थी और तीन माह तक योग निद्रा के अभ्यास के बाद यह संख्या बढ़कर 228/mm^3 हो गई यानि औसतन 73/mm^3 की वृद्धि हुई। वहीं,

दूसरी ओर समूह ख, जिन्हें केवल पवनमुक्तासन भाग-1 का अभ्यास करवाया गया, उनमें CD_4 की संख्या में कोई बदलाव नहीं देखा गया।

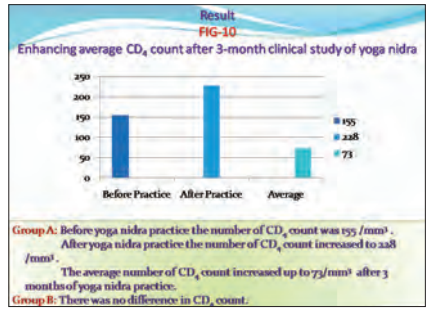

इसके अलावा योग निद्रा का अभ्यास करने वाले समूह में एच. आई.वी. के अन्य लक्षणों जैसे कि वजन में कमी, बिना कारण थकान, स्मरण-शक्ति का ह्रास, तनाव, त्वचा संबंधी समस्याएँ आदि में भी बहुत सुधार देखा गया। खांसी, दस्त और सांस लेने में तकलीफ पर भी काफी हद तक सकारात्मक प्रभाव पड़ा। तपेदिक में मामूली सुधार देखा गया।

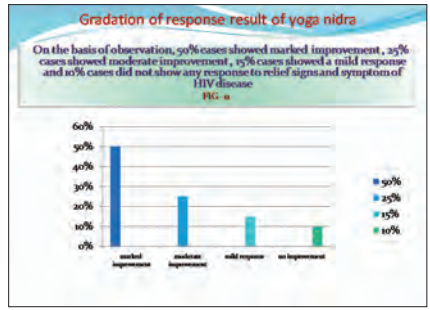

योग निद्रा के प्रभावों को यदि ग्रेड के आधार पर देखा जाए तो परिणाम इस प्रकार रहे–50 प्रतिशत मामलों में बहुत अधिक सुधार देखा गया, 25 प्रतिशत में मध्यम सुधार हुआ, 15 प्रतिशत में मामूली सुधार देखा गया और 10 प्रतिशत मामलों में CD_4 की संख्या में वृद्धि या एच. आई.वी. के अन्य लक्षणों में कोई सुधार नहीं पाया गया।

निष्कर्ष

एच.आई.वी. और एड्स पर योग के प्रभावों के संबंध में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि योग निद्रा इड़ा और पिंगला नाड़ियों में प्राणों के प्रवाह को सुव्यवस्थित करने के लिए एक प्रभावी थैरेपी के रूप में काम कर सकती है। यह प्रतिरक्षण तंत्र को स्वस्थ और सुचारु बनाए रखने में भी सहायक हो सकती है। यह CD_4 की संख्या में वृद्धि का एक माध्यम है और इसलिए इसमें एच.आई.वी. रोग को बढ़ने से रोकने की क्षमता है।

निष्कर्ष के रूप में मैं कहूँगा कि योग निद्रा के दौरान शरीर के विभिन्न अंगों में सजगता के साथ किया गया प्राणों का संचार एक प्रतिरक्षण प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है जो आयु, जीवनी शक्ति, मानसिक क्षमता तथा प्रतिरक्षण क्षमता में वृद्धि करता है। योग निद्रा एड्स एवं इससे संबंधित रोगों में अवश्य सहायक सिद्ध हो सकती है।

–विश्व योग सम्मेलन 2013, मुंगेर में प्रस्तुत व्याख्यान से उद्धृत

योग मेरी जिन्दगी, आश्रम मेरा आशियाना

श्रेयशा ऐश्वर्या, मुंगेर

यहाँ आश्रम में कुछ अलग है घर से, मंदिरों से, तीर्थस्थानों से, कॉलेज के हॉस्टल से। पर वह अलग है क्या? मेरी समझ से पहली चीज है सजगता। आश्रम जीवन में दिन-रात सजग रहने की शिक्षा मिलती है। यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है। हमें सदा सजग रहना चाहिये। अपनी सेवा में लगकर कई बार दिलचस्प गलतियाँ करती, पर गलतियों का अहसास होने का मतलब मैं सजग हूँ। ऐसा करके मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला।

सजगता की शुरुआत करते समय हम किसी आदर्श संन्यासी की नकल कर सकते हैं और वह कोई बुरी चीज भी नहीं। हममें से अधिकतर लोग बहुत कुछ दूसरों जैसा करते हुए भी अंततः अपनी मौलिकता हासिल कर लेते हैं। जीवन बहुत कठिन है, निर्णय गलत हो जाया ही करते हैं, लेकिन हम उनके प्रति सजग रहें बस।

दूसरी चीज है सेवा। सेवा करते समय हमें ध्यान में रखना चाहिए कि सेवा करके हम किसी पर उपकार नहीं करते, बल्कि उसके प्रति कृतज्ञ होते हैं कि उसकी वजह से हमें अपनी मनुष्यता को सार्थक करने का मौका मिला। कहा भी गया है– 'जीना तो है उसी का जिसने यह राज जाना, है काम आदमी का औरों के काम आना।'

वास्तव में सेवा का अवसर तो हमें गुरुजी ही देते हैं। वैसा करने का सामर्थ्य भी हमें उन्हीं से मिलता है। इसलिए सेवा का मौका मिलने पर हमारे मन में अहंकार नहीं, विनम्रता आनी चाहिए। कोई भी सेवा छोटी या बड़ी नहीं होती।

जीवन की सार्थकता सेवा में ही है। जब तक कोई भी कार्य एक सेवा जैसा लगता, मैं उसे करने के लिये तैयार रहती और जैसे ही वह एक काम लगने लगता, मैं रुक जाती जिसका अर्थ है कि काम में रस नहीं है, सेवा में रस है। मैंने आश्रम में यह अनुभव किया है कि जितनी अधिक सेवा करते हैं और जितनी सजगता से सेवा करते हैं हमें उतना ही अधिक आनन्द आता है और लगता है आज का दिन सफल हुआ।

तीसरी चीज है दान। जब मैं गुरुजी को दान देते हुए देखती हूँ तो मुझे रहीम का वह दोहा याद आ जाता है–

देनहार कोई और है, भेजत जो दिन-रैन।
लोग भरम हम पर करें, तासों नीचें नैन॥

यानि देनेवाला तो कोई और है, उसी ने मुझे इतना समर्थ बनाया कि मैं किसी को कुछ दे सकूँ। पर लोग समझते हैं मैं दे रहा हूँ इसी संकोच से मेरी आँखें झुक जाती हैं।

आश्रम जीवन के ये दिन मेरा जीवन पर्यन्त मार्गदर्शन करते रहेंगे। आश्रम में जो शिक्षा मुझे मिली उसे शब्दों में तो नहीं लिखा जा सकता, वह तो अनुभव करने की चीज है। सही अर्थों में शिक्षा का मतलब अपने को ज्ञान से भर देना नहीं, बल्कि अपने को सोचने का तरीका सिखाना है। आखिर गुरुजी सत्संग में कहते हैं न कि सही समझ प्राप्त करना ही जीवन में मुख्य चीज है। आश्रम में ग्रहण किये इस ज्ञान का केवल भौतिक लाभ नहीं, बल्कि इसका वास्तविक प्रयोजन मानव मूल्यों का अर्जन और विकास है, जिसके लिए मैं जीवनभर प्रयासरत रहूँगी।

एक चुटकी मिट्टी ही सही!

एक समय की बात है, स्वामी रामदास भिक्षा के लिए निकले। एक घर पर गए और 'जय जय रघुवीर समर्थ' गर्जना की, किंतु भीतर से कोई नहीं आया।

उन्होंने फिर से 'जय जय रघुवीर समर्थ' कुछ ऊँचे स्वर में कहा।

एक बुढ़िया घर से बाहर आई और कहने लगी, 'बाबा! घर में अन्न का दाना तक नहीं है, क्या दूँ? जैसे आये हो उसी तरह वापस लौट जाओ।'

समर्थ रामदास ने कहा, 'माई! आंगन से चुटकी भर मिट्टी लेकर मेरी झोली में डाल दे।'

'मिट्टी! मिट्टी कैसे डाल दूँ बाबा?'

'सवाल मिट्टी का नहीं, दान की आदत का है। अपने हाथ को देने की आदत लगने दे। नहीं-नहीं की आदत लग जाएगी तो फिर सम्पत्ति आने पर भी नहीं-नहीं कहती रहेगी। इसलिए कहता हूँ, मिट्टी ही क्यों न हो, लेकिन झोली में डालने की आदत बना ले।'

गुरु के चरणों में

हे चैतन्य ज्योति, सदा और सर्वदा ज्योतित रहना।
कल्पान्त-निशा में दीपमालिका का नवीन
और उल्लासप्रद त्यौहार लाना।
हम भी सुन्दर-सुन्दर उपहार ले कर,
विश्व की स्थाली को भरी-पूरी रखेंगे और
विश्व-प्रलय के उत्तरकाल में,
जब आप दिनमणिमाली बन कर पूर्व से जागोगे
तो हम रविस्वर्णदिवस की प्रभातकालीन दीपमालिकाओं से
आपकी आरती उतारने, स्निग्धनयन हो,
इसी त्रिपथगामिनी के तीर जागृत होवेंगे,
आपकी ज्योति में अमर ज्योति देखेंगे।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

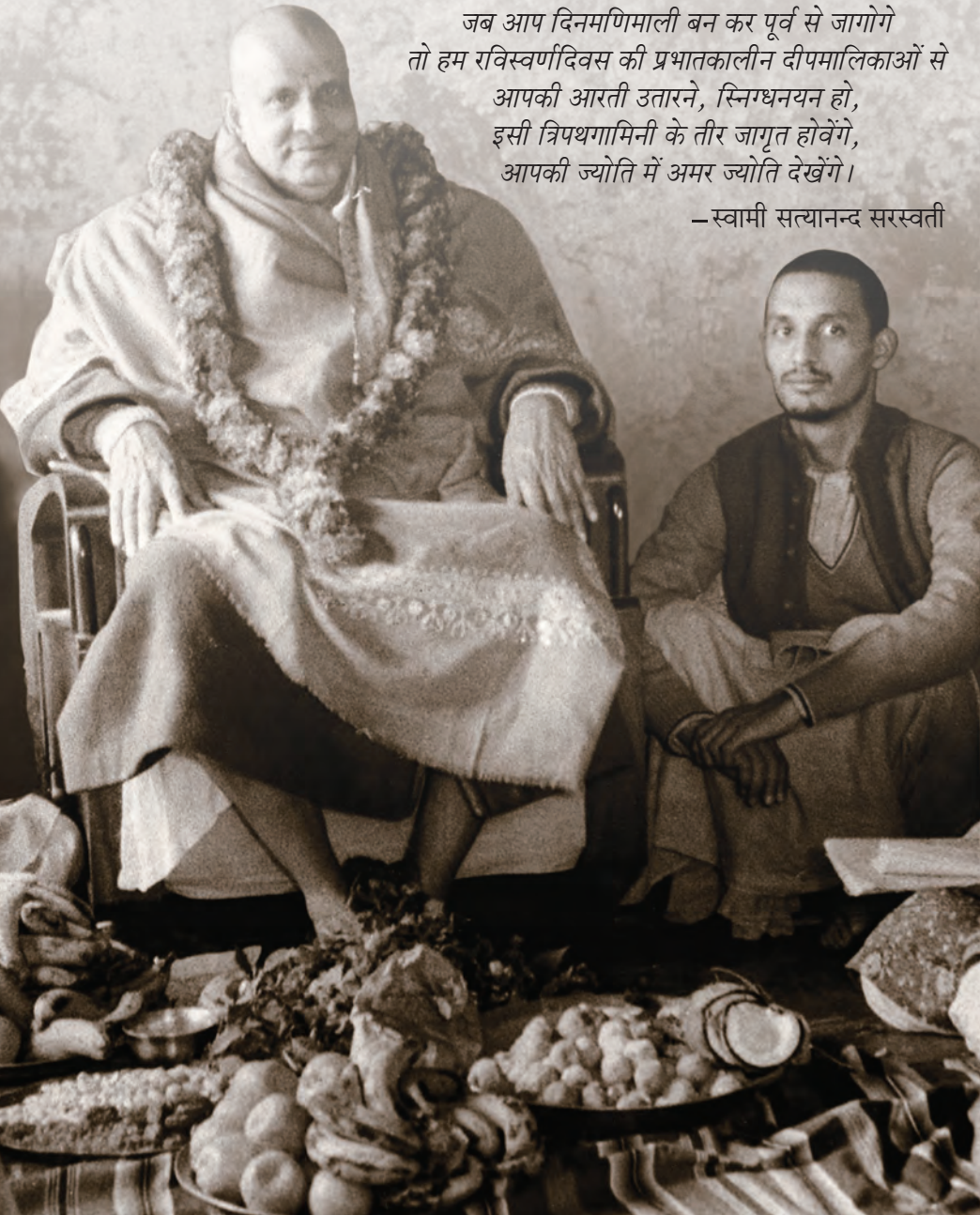

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

घेरण्ड संहिता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 404, ISBN: 978-81-86336-35-9

इस पुस्तक में महर्षि घेरण्ड प्रणीत घेरण्ड संहिता की स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा विशद व्याख्या की गयी है। इसमें सप्तांग योग की व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है। शरीर शुद्धि की क्रियाओं, जैसे, नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभाति और त्राटक से आरंभ कर आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के अभ्यासों का सरल भाषा में सचित्र सविस्तार वर्णन किया गया है। यह पुस्तक प्रारंभिक से लेकर उच्च योगाभ्यासियों के लिए अत्यंत उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक एवं संग्रहणीय है।

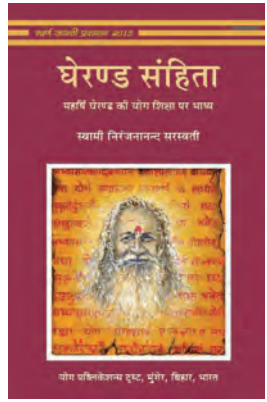

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

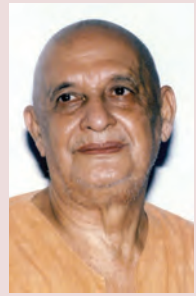

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में खोजने की सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

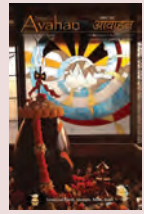

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ के कार्यक्रम एवं प्रशिक्षण 2016

सितम्बर 24-30	हठ योग-षट्कर्मों का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
अक्टूबर 3-30	प्रगतिशील योगविद्या प्रशिक्षण (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3- जनवरी 29	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अंग्रेजी)
अक्टूबर 22-28	राज योग-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 5-11	क्रिया योग-प्रारम्भिक (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 7- फरवरी 7 2017	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (अंग्रेजी)
दिसम्बर 19-23	योग चक्र शृंखला (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।